Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशपाल

राष्ट्र राज्य और संविधान

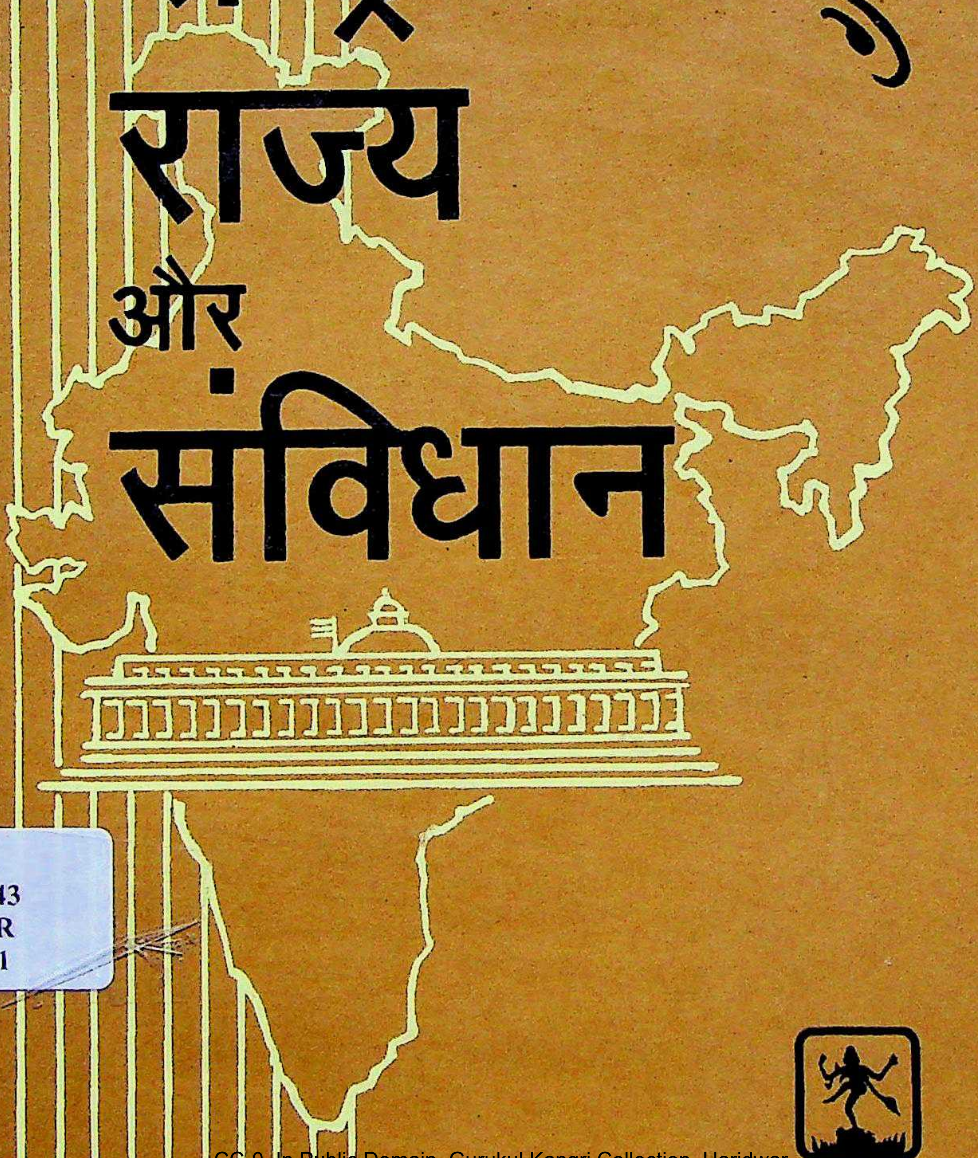

143
-R
71

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167971

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र, राज्य और संविधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र, राज्य और संविधान

Central Library
167971
Gurukul Kangri ... (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

081
167971

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-R

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
30/90 कनॉट सरकस, नई दिल्ली-110001

मूल्य : 35.00 रुपये

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय

बाल्यकाल से ही श्री गुरुदत्त जी ने राजनीतिक हलचल को सूक्ष्म दृष्टि से देखा। आर्यसमाज का जीवन पर प्रभाव होने के कारण उन्होंने राजनीतिक घटनाओं का युक्तियुक्त विश्लेषण भी किया।

समय-समय पर सक्रिय राजनीति में भी गुरुदत्त जी भाग लेते रहे। अपने अनुभवों को तथा अपने विश्लेषण को श्री गुरुदत्त जी ने अपनी कई रचनाओं में पाठकों के सम्मुख रखा है।

इस पुस्तक में श्री गुरुदत्त जी ने राजनीतिक विशेषतया भारतीय राजनीतिक दुर्व्यवस्था का कारण ढूंढने का प्रयास किया है।

भारतीय संविधान में कुछ आधारभूत भूलें हैं, जिनके कारण वर्तमान दुर्व्यवस्था फैली है तथा निरन्तर फैलती जा रही है। इस सम्पूर्ण संविधान में भारतीय चिन्तन का लेश-मात्र भी संकेत नहीं है। अल्प संख्यकों का उल्लेख कर देश में वैमनस्य का बीज बो दिया गया है। धारा 370 बनाकर देश की अखण्डता को धक्का पहुँचा दिया है। लेखक का मत है कि संविधान में मूल-चूल परिवर्तन लाना होगा।

लेखक ने एक आदर्श संविधान की रूपरेखा इस पुस्तक में प्रस्तुत की है। हमें आशा है कि बुद्धिशील पाठकों को इससे प्रेरणा प्राप्त होगी।

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

भूमिका 7

प्रथम परिच्छेद 11
भूमंडल का प्रथम संविधान; मैगनाकार्टा; फ्रांस की क्रान्ति; यू०एन०ओ०—घोषणा पत्र।

द्वितीय परिच्छेद 42
राष्ट्र; समाज, समाजवाद और संविधान; राष्ट्र; राष्ट्र के घटक; देश; मूलाधिकार; वर्तमान लोक सभा; वर्तमान राज्य सभा; राष्ट्रपति।

तृतीय परिच्छेद 66
राष्ट्र की तीन समितियाँ; राष्ट्र की तीन समितियों का समन्वय; केन्द्र और राज्य; अर्थ व्यवस्था।

चतुर्थ परिच्छेद 78
नागरिकता; राज्यपाल; राष्ट्र के गौण अंग; केन्द्र और राज्यों के लिए नीति-निर्देशक सिद्धान्त।

पंचम परिच्छेद 86
शिक्षा और भाषा; अर्थ-व्यवस्था और आयोग; सुरक्षा आयोग; आपात् स्थिति; सम्पत्ति; कर्त्तव्य; कार्यवाह अधिकारी।

उपसंहार 101

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

भारत देश में व्यवस्था उत्तरोत्तर बिगड़ती जा रही है, यह तो एक अन्धा व्यक्ति भी देख सकता है। भारत की यह दुर्व्यवस्था स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त ही आरम्भ हुई है।

महात्मा गाँधी की हत्या के उपरान्त बाबू जयप्रकाश नारायण ने अपने कम्युनिस्ट साथियों के साथ सरदार पटेल के बंगले का घेरा डाल लिया था। यदि श्री जवाहर लाल नेहरू उनको मना न करते तो क्या होता, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

और उससे भी पूर्व वही गाँधी जी, जो यह कहने में संकोच नहीं करते थे कि वह सरकार नहीं हैं, पाकिस्तान को चव्वन करोड़ रुपये दिलवाने के लिए भूख हड़ताल कर बैठे थे।

और फिर पंडित नेहरू के सहयोगी श्री गाडगिल का आरोप है कि नेहरू मंत्री-मण्डल से पूछे बिना विदेशों में राजदूत भेजते थे। इसी प्रकार की दुर्व्यवस्था की अनेक बातें स्वराज्य मिलते ही कांग्रेस राज्य में होने लगी थीं। उस समय राष्ट्र और राज्य में अन्तर नहीं रहा था। वे सब प्रतिबन्ध जो अंग्रेज़ी सरकार ने युद्ध के दिनों में लगाये थे और जिनके विरुद्ध कांग्रेस गला फाड़-फाड़ कर चीख रही थी, स्वराज्य मिलने पर भी रहने दिये गए।

तब गेहूँ 20 रुपये मन था, चीनी 15 रुपये मन थी, चावल 12 रुपये मन था। स्वराज्य मिलते ही इन खाद्य पदार्थों का मूल्य बढ़ने लगा। बीच में कुछ काल के लिए खाद्य विभाग श्री रफी अहमद किदवई के हाथ में आया तो उन्होंने कन्ट्रोल उठवा दिये और मूल्य एकदम गिरे। चीनी, गेहूँ, चावल इत्यादि पदार्थ चाँदनी चौक की पटरियों पर बिकने लगे।

परन्तु तब किदवई साहब का विभाग बदल दिया गया और पुनः कन्ट्रोल लागू हो गये। एक मिनिस्टर साहब ने उत्तर प्रदेश में चीनी के जिला कन्ट्रोलर नियुक्त किये और समाचार पत्रों में चर्चा थी कि मिनिस्टर साहब को केवल उत्तर प्रदेश में चीनी के व्यापारियों से पचास लाख की 'टिप' मिली थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका इलाज कांग्रेस ने समाजवाद समझा और परिणाम यह हुआ कि आज 34 वर्ष स्वराज्य मिले हो गये हैं और कन्ट्रोल एवं राशन अभी तक चल रहे हैं। ऐसा करने पर भी वस्तुओं के मूल्य दिन दुगने रात चौगुने होते जाते हैं। अब गेहूँ की खरीद का भाव ही 120 रुपये प्रति क्विंटल से ऊपर है। अर्थात् लगभग 50 रुपये मन है। चीनी 8 रुपये किलो है, चावल 5 से 7 रुपये किलो है। इसी प्रकार अन्य आवश्यकताओं के मूल्य आसमान को छू रहे हैं।*

ज्यों-ज्यों स्वराज्य पुराना होता जाता है महँगाई बढ़ती जाती है। ज्यों-ज्यों सन्तान निरोध का शोर मचाया जा रहा है जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ती जा रही है। ज्यों-ज्यों नये-नये कानून बनाए जा रहे हैं अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। अब तो अशान्ति फैलाने में राज्य अधिकारी और पुलिस भी कदम बढ़ाने लगे हैं।

अंग्रेज़ी जमाने में पुलिस एक भय का कारण थी परन्तु लेखक को अपना एक अनुभव स्मरण है। हत्या के अपराध की जाँच करते हुए पुलिस उसे पकड़ने आयी थी। उसे खुफिया पुलिस के दफ्तर में पहुँचाया गया और सामान्य प्रश्नों के उपरान्त उसे छोड़ दिया गया था। आज तो अभियुक्तों की, जाँच-पड़ताल से पहले ही आँखें फोड़ दी जाती हैं।

समाचार पत्रों को पढ़ने से दिल बैठने लगता है। कहीं यह लिखा मिलता है कि अमुक व्यक्ति को सुविधाएँ राजनीतिक कारणों से दी गयी हैं। लोक सभाओं, विधान सभाओं में मुक्का-मुक्की के भी समाचार आने लगे हैं।

इस पर प्रश्न उपस्थित होता है कि भूमण्डल के अन्य देशों में भी तो यही कुछ हो रहा है। अमरीका में लगभग एक सौ वर्ष में चार राष्ट्रपतियों की हत्या हो चुकी है। इनके अतिरिक्त एक-दो की हत्या का यत्न भी किया गया है। बंगला देश में राष्ट्रपति की हत्या करते समय उसकी पत्नी और बच्चों तक की हत्या कर दी गयी थी। पाकिस्तान में पिछले 33 वर्ष में लगभग 20 वर्ष तक तानाशाही का राज्य रहा है। वहाँ भी प्रधान मंत्री की हत्या से ही इसका श्रीगणेश किया गया था।

दिल्ली जैसे नगर में एक वर्ष में 150 के लगभग हत्याएँ होती कही जा रही हैं। अर्थात् हर दूसरे दिन एक की हत्या हो ही जाती है और यह एक अधिकारी का कथन है कि भूमण्डल के बड़े नगरों से दिल्ली में कम अपराध होते हैं। हम समझते हैं कि भारत की डिमोक्रेसी अभी उनके समान पुरानी नहीं हुई है, इस पर भी हम उन तक पहुँचने का यत्न कर रहे हैं।

वर्षों तक लेखक इस दुर्व्यवस्था पर विचार करता रहा है और उसकी समझ

---

* महँगाई की स्थिति का वर्णन सन् 1981 का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह आता है कि भारत में विशेष रूप में और भूमण्डल में सामान्य रूप में कुछ आधारभूत भूलें हो रही हैं, जिनसे दिन-प्रतिदिन जनसंख्या बढ़ रही है और अपराध पहले से भी अधिक गति से बढ़ रहे हैं।

अपराधों में राज्याधिकारी खुलकर भाग लेते हैं। ज्यों-ज्यों मंत्रियों के बेटों और दामादों पर लोक सभा के भीतर तथा बाहर आरोप लगाये जाते हैं त्यों-त्यों लोग अधिक से अधिक धन व्यय कर लोक सभा में आने का प्रयास करने लगे हैं।

इन आधारभूत भूलों की खोज में जो समझ में आया है उसका सुधार ही इस पुस्तक में बताने का यत्न किया है।

यह एक व्यक्ति के चिन्तन का परिणाम है। कोई इससे सहमत नहीं भी हो सकता। इस पर भी विचारित बात को प्रमाण तथा युक्ति से उपस्थित करने का यत्न किया गया है। मुख्य बात है समन्वय राष्ट्र, राज्य तथा संविधान में। इसका ही एक चित्र यहाँ प्रस्तुत करने का यत्न किया है।

आशा है कि विचारशील लोग इस ओर ध्यान देंगे।

प्रजातंत्र की जो व्याख्या यूरोप में हो रही है वह लेखक को पसन्द नहीं। समन्वय की कल्पना जो उसने प्रस्तुत की है, वह विचारणीय है। यदि इस लेख से कुछ भी जाति के कर्णधारों को विचार करने में प्रोत्साहन मिलेगा तो लेखक अपने को कृत-कृत्य समझेगा।

लेखक समझता है कि राष्ट्र मुख्य है। राज्य राष्ट्र का सेवक है और राष्ट्र का मस्तिष्क विद्वान तथा बुद्धिमान और चरित्रवान लोग हैं। जब मस्तिष्क ही खराब हो जाए तो शरीर के अन्य अंगों का परमात्मा ही मालिक है। बुद्धिमानों की खोज मतदाता केन्द्रों पर नहीं होती।

लेखक 12 वर्ष की आयु से राजनीति को एक दर्शक की दृष्टि से देखता रहा है। वह अखाड़े का पहलवान नहीं है। इस कारण वह समझता है कि वह पहलवानों के गुण-दोषों को पहलवानों से अधिक समझ सका है।

लेखक समझता है कि समस्या को यूरोप की ऐनक से देखा जा रहा है। आवश्यकता है उसे बुद्धि की ऐनक से देखने की। इसी कारण प्रत्येक सुझाव में युक्ति देने का यत्न किया गया है।

दिनांक 25 अप्रैल, 1981 **गुरुदत्त**
18/28 पंजाबी बाग, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

: 1 :

मानव मन में द्वन्द्व चलता रहता है। एक ओर कामनाओं और अभिलाषाओं का सागर ठाठें मार रहा है तथा दूसरी ओर बुद्धि एवं मन इन विकारों पर नियंत्रण रखने का यत्न करते दिखाई देते हैं। इस संघर्ष में मानव ऊपर और नीचे की गतियों पर भटकता रहता है। बुद्धिमान् व्यक्ति मन को कामनाओं से ऊपर उठा अपने को परम सुख की ओर ले जाने का यत्न करते रहते हैं।

इन्द्रियों के सुखों की अभिलाषा का नाम कामना है। कामनाएँ मनुष्य को बुद्धि की सीमा का उल्लंघन कर सांसारिक अस्थायी इन्द्रिय सुखों की ओर चलने की प्रेरणा देती रहती हैं।

यह मानव-जीवन की अनादि कथा है जो आदि काल से संसार में हलचल मचाती रही है।

यह सब क्यों है ? क्या यह मानव के निर्माण में दोष नहीं है ? इस दोष का उत्तरदायित्व किस पर है ? ये शाश्वत प्रश्न हैं, इनका दिग्दर्शन ही इस पुस्तक में कराने का यत्न किया जा रहा है।

वैदिक शास्त्रों का कथन है कि बहुत बड़ी संख्या में जीवात्मा इस विश्व में अनादि काल से विद्यमान हैं। उन जीवात्माओं में परम सुख पाने की अभिलाषा रहती है। यह अभिलाषा एक अन्य आत्मतत्त्व, जो सदा आनन्दमय है, को देखकर उत्पन्न होती है और उस अभिलाषा की पूर्ति में यह आत्मतत्त्व यत्न करता रहता है। इसी यत्न में अवसर प्रदान करने के लिए वह आनन्दमयी तत्त्व इन जीवात्माओं को वर्तमान सुख-सुविधायुक्त शरीर देता है।

इस पूर्ण कथन का वर्णन ऋग्वेद का एक मंत्र इस प्रकार करता है—

प्रकृति रूपी वृक्ष के ऊपर दो सुन्दर पंखों वाले (अथवा गतियों वाले) आत्मतत्त्व बैठे हैं। दोनों सखा हैं और समान आयु वाले हैं। एक प्रकृति रूपी वृक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के फल स्वाद से खाता है और दूसरा इस वृक्ष के फल नहीं खाता वरन् देखता रहता है।[1]

ऐसा क्यों है ? कोई नहीं जानता, परन्तु संसार की यह वस्तुस्थिति है। यह अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगी। ऐसा स्पष्ट समझ में आता है।

इस विषय में स्वामी शंकराचार्य मानते हैं कि इस संसार में एक ही तत्त्व है और जो दो प्रकार के तत्त्व तथा उनमें भिन्नता दिखाई देती है, वह भ्रम है, माया है। मूलतः तत्त्व एक ही है; इस पर भी शंकरपंथी 'द्वा सुपर्णा.... ।' वाली स्थिति को वर्तमान में स्वीकार करते ही हैं।

जीवात्मा प्रकृति के फलों (wordly things) का भोग करता है और सुख-दुःख पाता है। आत्मा प्रकृति के सुखकारक भोगों की सदा के लिए अभिलाषा करता है। इस अभिलाषा में वह कुछ ऐसा कर्म कर बैठता है जिससे संसार में अन्य उपस्थित आत्माओं को दुःख की प्राप्ति होती है और जीवात्माओं में छीना-झपटी होने लगती है।

राष्ट्र, राज्य और संविधान की कथा इस छीना-झपटी और इससे बचने की कथा है। महाभारत का लेखक इसका बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन करता है। वह कहता है—

आदियुग में अर्थात् इस पृथ्वी पर मानव के आविर्भाव के समय न कोई राजा था, न ही कोई राज्य था। सब लोग धर्मानुसार अपना जीवन चलाते थे। कोई किसी दूसरे का भाग लेने की इच्छा नहीं करता था।

धर्मानुसार जीवन चलाने से अभिप्राय यह है कि जो कुछ मनुष्य अपने प्रयत्न से प्राप्त करता था, उसमें ही वह सन्तुष्ट रहता था। न राजा की आवश्यकता थी न राज्य की।

कदाचित् इसमें कारण था। कारण यह प्रतीत होता है कि प्रकृति उपभोग के पदार्थ प्रचुर मात्रा में अनायास ही दे रही थी। भोक्ता अभी कम संख्या में थे और भोज्य पदार्थ आवश्यकता से अधिक थे। कदाचित् यह भी कारण था कि जो कुछ प्रकृति में उपलब्ध था, उस अवस्था को सुधारने का ढंग मनुष्य जानता नहीं था।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। ऐसी परम्परा है कि मनुष्य किसी अनुकूल जलवायु वाले स्थान पर उत्पन्न हुए। वहाँ मनुष्य की सर्वाधिक आवश्यक वस्तु, भोजन के पदार्थ प्रचुर मात्रा में थे। सृष्टि कम थी। भोजन

---

1. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥ (ऋ० 1-164-20)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामग्री फल, कन्द, मूल प्रचुर मात्रा में थे। अतः सब अनायास ही पेट भर सकते थे और किसी को किसी के मुख से छीनने की आवश्यकता नहीं थी।

चाहे तो (वैदिक परम्परा के अनुसार) यह मानें कि मनुष्य ऐसे ही उत्पन्न हुए जैसे आज हैं और चाहे यह मानें कि निम्न कोटि के जन्तुओं से उच्च कोटि के प्राणी बने, यह तो मानना ही पड़ेगा कि जीवन-संघर्ष तब आरम्भ हुआ जब जनसंख्या बढ़ी और जीवन के लिए अनायास मिलने वाली वस्तुओं का अभाव प्रतीत होने लगा।

तब क्या हुआ? महाभारत ग्रन्थ में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

आदियुग में न कोई राजा था, न राज्यदण्ड। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।[1]

परन्तु जब मनुष्य मोह के वशीभूत हो गये, तब कर्त्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञान से वंचित होने के कारण धर्म का नाश हो गया। तब लोभ प्रधान हो गया। इस पर जो वस्तु उनको प्राप्त नहीं थी, उसे पाने का वे प्रयत्न करने लगे। काम नाम का दोष उत्पन्न हो गया। इससे छीना-झपटी होने लगी।[2]

वस्तुस्थिति हमने ऊपर वर्णन की है। जब जनसंख्या बढ़ जाने पर आवश्यक वस्तुएँ कम पड़ने लगीं अथवा जब कामनाओं ने जोर मारा तो मोह और लोभ में वृद्धि हुई और धर्म का नाश हुआ तथा अपने-पराये का ज्ञान नहीं रहा।

भले लोग जो मोह, लोभ और काम के वशीभूत नहीं थे और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को नहीं भूले थे, वे इस छीना-झपटी को रोकने के उपाय विचार करने लगे।

उन्होंने एक सम्मेलन किया। उसमें ब्रह्मा (तत्कालीन किसी महान् विद्वान्)

---

1. न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥ 14॥
2. ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ।
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीशत्॥ 16॥
नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तदा।
लोभस्य वशमापन्नाः सर्वे भरतसत्तम॥ 17॥
अप्राप्तस्याभिमर्शं तु कुर्वन्तो मनुजास्ततः।
कामो नामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो॥18॥
तांस्तु कामवशं प्राप्तान् रागो नाम समस्पृशत्।
रक्ताश्च नाभ्यजानन्त कार्याकार्ये युधिष्ठिर॥ 19॥

महाभारत शान्ति० 59—14, 16, 17, 18, 19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बुलाया और इस छीना-झपटी का प्रतिकार ढूँढने लगे। तब राज्य की स्थापना का विचार हुआ और एक राजा जो ऐश्वर्यवान् (अभिप्राय है कि दृढ़निष्ठ राजा) नियुक्त किया गया। एक धर्मशास्त्र (अर्थात् दंड विधान) की कल्पना की गई।

एक कर्दम के पुत्र अनङ्ग को प्रथम राजा नियुक्त किया गया और उसे ब्रह्मा द्वारा बनाई स्मृति (धर्मशास्त्र) के अनुसार राज्य करने का कार्य सौंपा गया।[1]

अनङ्ग ने कुशलतापूर्वक भले लोगों की रक्षा की। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका लड़का, 'अतिबल' राजा हुआ और उसके निधन पर उसका पुत्र वेन राजा बना।

वेन आरम्भ में तो धर्मपरायण ही था, परन्तु पीछे वह अत्याचार करने लगा।

जब कोई राजा बनता है तो वह शक्ति का संचय करता है। यह शक्ति-संचय इस कारण की जाती है कि जिससे काम, मोह इत्यादि के वशीभूत लोग अपने संगठन बनाकर धर्मपरायण लोगों को कष्ट न दे सकें।

वेन ने शासक बनकर जो शक्ति-संचय की, उसे वह अपने स्वार्थ के लिए ही प्रयोग करने लगा। उसने जब धर्मपरायण तथा भले विद्वानों को कष्ट देना आरम्भ किया तो फिर ऋषियों ने जन-साधारण को संगठित कर उसे मरवा डाला।

वेन के मारे जाने के उपरान्त विचार होने लगा कि किसको राजा बनाया जाए। वेन के कई पुत्र थे। वे सब राजा बनने का दावा कर रहे थे। परन्तु ऋषियों ने किसी एक क्षत्रिय स्वभाव के व्यक्ति को जो धर्मपरायण था, गद्दी दी। इस व्यक्ति का नाम पृथु था।

पृथु की परीक्षा ली गई और फिर उससे वचन लिया गया कि वह कुछ नियमों का पालन करेगा। जब उससे धर्मों के पालन का वचन ले लिया गया तब उसे राज्यासीन किया गया।

इस प्रकार भूमण्डल पर प्रथम संविधान का निर्माण हुआ।

: 2 :

भूमण्डल का प्रथम संविधान

वेन के दुर्व्यवहार को देखकर ऋषिगण यह समझे कि ब्रह्मा के धर्मशास्त्र के रहते हुए भी राजा तथा प्रजा में विवाद खड़ा हो सकता है।

---

1. प्रजापतेः कर्दमस्य त्वनङ्गो नाम वै सुतः।
प्रजा रक्षयिता साधुर्दण्डनीतिविशारदः॥
—महाभारत शान्ति० 59-91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण के रूप में राजा राज्य प्रबन्ध के लिए कर प्राप्त करता है। इस प्रकार इस कर का अधर्माचरण करने वाली प्रजा से कोई सम्बन्ध नहीं। तो क्या शासक मनमाना कर लगा सकता है? साथ ही क्या राजा सब धर्मपरायण जनता पर कर लगा सकता है?

इस प्रकार शासक शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने के लिए सेना रख सकता है, परन्तु क्या वह जिसको चाहे सैनिक नियुक्त कर ले? अथवा जहाँ चाहे सेना का प्रयोग करे?

इस विचार के परिणामस्वरूप ऋषियों ने निश्चय किया कि राज्य और शान्ति-प्रिय प्रजा में कुछ अनुबंध होना चाहिए अन्यथा एक निरंकुश शासक भले लोगों को कष्ट भी दे सकता है।

अतः एक शासक और धर्मपरायण प्रजा में भी कुछ निश्चित व्यवहार होना आवश्यक है, अन्यथा दुष्टों में शान्ति स्थापित करता हुआ शासक धर्मपरायण प्रजा को भी कष्ट पहुँचाने वाला हो सकता है।

अतः पृथु को राज्य देते समय ऋषियों ने प्रजा और राजा में अनुबंध किया। यह राजा और प्रजा में एक प्रकार का वचन-पत्र था। पृथु से प्रतिज्ञा ली गई कि—

1. जिस कार्य से नियमपूर्वक धर्म की सिद्धि होती हो, उसे मैं निर्भय होकर करूँगा;[1]
2. प्रिय और अप्रिय का विचार छोड़कर काम, क्रोध, मोह और लोभ को दूर हटाकर सब प्राणियों के प्रति समभाव रखूँगा;[2]
3. जो कोई भी मनुष्य धर्म से विचलित होगा, सनातन धर्म पर दृष्टि रखते हुए, उसे अपने बाहुबल से परास्त कर उसको दण्ड दूँगा;[3]
4. पृथु ने यह प्रतिज्ञा भी ली कि मैं ब्रह्म (वेद तथा ज्ञान) का निरन्तर पालन करूँगा;[4]

---

1. तमूचुस्तत्र देवास्ते ते चैव परमर्षयः ॥
   नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर ॥103
2. प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
   कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः ॥104
3. यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
   निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद् धर्ममवेक्षता ॥105 *(महा० शान्ति० 59-103, 104, 105)*
4. प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
   पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत् ॥ 106 ॥ (महा० शान्ति० 59-106)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. दण्डनीति में जो व्यापक धर्म कहे गए हैं, उनका निःशंक हो पालन करूँगा;[1]
6. ब्राह्मण (विद्वान व्यक्ति) मेरे लिए अदण्डनीय हैं और मैं सब प्राणियों को वर्णसंकरता और धर्मसंकरता से बचाऊँगा।[2]

जब पृथु ने इन सब बातों के पालन करने का वचन दिया तो ऋषियों ने उसे आशीर्वाद दे दिया।

यह है संविधान का आरम्भ।

यह वर्तमान भारत के संविधान से बहुत कम है। इस पर भी हमारा विचार है कि यह राजा और प्रजा में तत्कालीन आवश्यकताओं को सर्वथा पूर्ण करने वाला था।

पृथु जीवन-भर ऋषियों के इस आदेश का पालन करता रहा और उसके राज्य की इतनी महिमा गाई जाती है कि कहा जाता है कि परमात्मा, विष्णु स्वयं उसके राज्य में विराजमान रहता था और धन-धान्य, सुख-सम्पदा सदा और सर्वत्र विराजमान थी।

परन्तु देश और समाज की स्थिति आज वह नहीं है जो पृथु के काल में थी। अन्तर आया है जनसंख्या की वृद्धि में, पृथिवी की उपजाऊ शक्ति कम होने में, मानव समाज की विस्तार पाती हुई आवश्यकताओं में, तकनीकी उन्नति से मनोकामनाओं की वृद्धि में और मनुष्य के भूमिखण्ड के मूल्य के ज्ञान में। इन सब प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ मानव मनोवृत्ति में भी अन्तर आया है। क्षीण हो रही प्राकृतिक उपलब्धियों के कारण मनुष्य में लोभ, मोह तथा काम में वृद्धि हुई है और उनकी रक्षा के लिए मनुष्य ने जाति, देश, विचारधारा इत्यादि को आधार बनाकर जनसमूह बना लिये हैं तथा उन समूहों ने प्राकृतिक उपलब्धियों के लिए झगड़े, फसाद और युद्ध करने आरम्भ कर दिए हैं।

इन झुण्डों को कई नाम दिए जाते हैं। एक नाम है मज़हब। एक अन्य नाम है रीति-रिवाज, भारत में जन्म-जात जातियाँ, अमेरिका में काले-गोरे का रंग भेद, निर्धन अथवा अति धनियों के देश में आर्थिक स्तर। ये और इसी प्रकार के कुछ अन्य नाम हैं मानव गुटबंदियों के।

इन गुटबंदियों के परिणामस्वरूप संविधान जैसा कि पृथु के काल में विचार

---

1. **यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः।**
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥ 107॥ *(महाभारत शा०-59-107)*
2. **अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो।**
लोकं च संकरात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परंतप॥ 108॥ *(महाभारत शा०-59-108)*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया था, वह पर्याप्त नहीं समझा जा रहा। यद्यपि हमारा मत है कि ये भेदभाव संविधान का विषय नहीं हो सकते। मनुष्य में एक आवश्यक गुण के अभाव के कारण देश-भक्ति, जाति-भक्ति, रंग-भक्ति इत्यादि बातें संविधान जैसी बात में अनुचित हस्तक्षेप कर रही हैं।

संविधान भले लोगों के समाज में और उस द्वारा निर्मित राज्य में एक समझौता (contract=अनुबंध) होता है। इसका अधर्माचरण करने वाले लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अधर्माचरण के लिए दण्ड विधान (धर्मशास्त्र) की कल्पना की गई है। जो लोग हृदय से धर्म की स्थापना चाहते हैं, वे इस निमित्त राज्य का निर्माण करते हैं, तब उनमें और शासक के भीतर अनुबंध होता है। इसी का नाम संविधान है। अभिप्राय यह है कि धर्म-पालन करते हुए भी कुछ प्रतिबन्ध राज्य पर होते हैं, वे प्रतिबन्ध संविधान हैं।

राज्य का निर्माण इस कारण किया जाता है कि जिससे अधर्माचरण करने वालों को नियंत्रण में रखा जाए और वे धर्म का उल्लंघन न कर सकें।

धर्म क्या है? और कौन धर्म का उल्लंघन कर रहे हैं? इसके लिए शास्त्र जिसका नाम अंग्रेज़ी में Penal code है, का निर्माण किया गया है।

संविधान धर्मशास्त्र (Penal Code) नहीं है। जनता में धर्म का उल्लंघन करने वालों को सन्मार्ग दिखाना संविधान का विषय नहीं है। समाज का नैतिक तथा आर्थिक स्तर उठाना भी संविधान का कार्य नहीं है। संविधान तो राज्य की उच्छृंखलताओं पर लगाम लगाने के लिए है। यह राज्य की उद्दण्डता से भले लोगों की रक्षा के लिए एक यंत्र है।

यह स्पष्ट ही है कि भारत के वर्तमान संविधान में राष्ट्र और राज्य के कार्य को गलत-मलत किया गया है। राज्य के हाथ में राष्ट्र की शिक्षा का कार्य दे दिया गया है। अतः शिक्षा एक गंदी नाली बन गई है जिसमें संसार-भर का कूड़ा-करकट भर दिया गया है। जो अंग प्रबन्ध करने के लिए था, वह शिक्षक बन गया है अर्थात् एक थानेदार शिक्षक हो गया है। यह संविधान का अर्थ न समझने के कारण ही है।

धर्मशास्त्र अर्थात् दण्ड विधान का विषय और शिक्षा का विषय हमारे 'बुद्धिमान' संविधान-निर्माताओं ने संविधान में डाल दिये हैं। उदाहरण के रूप में संविधान में एक निर्देश है कि अछूत तथा पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी सेवाओं और सरकारी संस्थाओं में स्थान सुरक्षित किए जाएँ और इसके लिए राज्य विधान सभाएँ कानून बना सकती हैं।

संविधान में अछूतोद्धार अर्थात् उनके लिए विशेष अधिकार, सिक्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुदाय के साथ रियायत, मुसलमानों के लिए विशेष कानून इत्यादि बातें डाल दी गई हैं। शिक्षा मन्त्री का शिक्षा में हस्तक्षेप, राज्य की ओर से शिक्षा आयोग का निर्माण, उसमें विदेशियों को सम्मिलित करना, इत्यादि अनेक बातें हैं जिनका संविधान में राज्य को अधिकार दे दिया गया है।

एक अन्य व्यवस्था इस दिशा में है। वह यह कि अछूत जातियों के लिए निर्वाचनों में लोक सभा तथा विधान सभा में पृथक् विधान-क्षेत्र बना रखे हैं, जहाँ पढ़े-लिखे बुद्धिमानों को अनपढ़ तथा पिछड़ों को मत देने पर विवश किया जा रहा है। यह अधिकार दस वर्ष तक दिया गया था, तदनन्तर प्रत्येक दस वर्ष के उपरान्त इसको दस वर्ष के लिए बढ़ाया जाता रहा है। इसे भी संविधान में रखना सामान्य कानून में संविधान का हस्तक्षेप है।

कई अन्त बातें हैं जिनका स्थान संविधान में नहीं होना चाहिए। वे संविधान में घुसेड़ दी गई हैं। इनके विषय में हम संविधान का वर्णन करते हुए व्याख्या से कहेंगे।

यहाँ तो हम यह बताना चाहते हैं कि जहाँ पृथु ने ऋषियों से यह शपथ ली थी कि वह सबके साथ समान न्याय करेगा, धर्म के मुख्य नियमों का कभी उल्लंघन नहीं करेगा, वहाँ वर्तमान भारत के संविधान में सामान्य धर्मों और न्याय का उल्लंघन करने की स्वीकृति शासन को दे दी गई है। संविधान और धर्मशास्त्र परस्पर विरोधी नहीं हो सकते। परन्तु भारत के संविधान में यही दिखाई दे रहा है।

ऐसा क्यों हुआ? इसमें बलशाली की धींगा-मस्ती और राष्ट्र की दुर्बलावस्था से राष्ट्र के धूर्त अंग का अनुचित लाभ उठाना है। यह कब से भारत में हुआ है, विचारणीय है।

यह ठीक है कि समय-समय पर राजा निरंकुश होते रहे हैं। कंस, दुर्योधन, भीष्म, धृतराष्ट्र इत्यादि राजा प्राचीनकाल में हुए हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए अधिकारी व्यक्तियों का अधिकार छीनते रहे हैं। परन्तु यह भारत में कभी भी एक संविधान का विषय नहीं हुआ। इनको किसी ने कभी ठीक नहीं माना।

जहाँ तक हमारा इतिहास का ज्ञान है, भारत में अशोक पहला राजा था जिसने राज्य के विधि-विधान में अनधिकारियों को, बौद्ध होने के कारण, दूसरे धर्म वालों पर उपमा दी थी। हमारे विचार में उस काल के बौद्ध नास्तिक, प्रायः अनपढ़ अथवा कम शिक्षित और पिछड़े हुए लोग थे। अशोक ने कलिंग देश पर आक्रमण कर तथा वहाँ घोर अत्याचार कर अपने को इतना बदनाम कर लिया था कि उसे देश के बुद्धिशील न्यायप्रिय लोगों का मुख बंद करने के लिए समाज के पिछड़े वर्ग अर्थात् बौद्धों का आश्रय लेना पड़ा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे कोई अन्यायी राजा अपने अन्यायाचरण को छुपाने के लिए करता है, वैसा ही अशोक ने किया था।

इतिहास के ज्ञाता इतना जानते हैं कि अशोक 'देवानांप्रिय' ने इस कारण दण्ड-विधान को राज्य नियम (संविधान) से मिलाया था क्योंकि वह अपने निरकुंश व्यवहार का समर्थन राज्य से चाहता था।

यही बात इंग्लैण्ड के सबसे पहले संविधान मैगनाकार्टा (Magna Carta) में हुई थी। इस चार्टर का इतिहास देखें तो हमारी ऊपर कही बात स्पष्ट हो जाएगी।

Magna Carta इंग्लैण्ड के राजा और उसके राज्य के सहायकों (Barrons) में प्रथम अनुबंध हुआ था।

विलियम विजेता ने जब इंग्लैण्ड पर राज्य स्थापित किया तो उसने आवश्यकता से अधिक अधिकार अपने लिए सुरक्षित कर लिये। उसने न केवल सामान्य प्रजा के अधिकारों को कम किया वरन् उन रईस जमींदारों के भी अधिकारों को कम कर दिया जिनकी सहायता से उसने विजय प्राप्त की थी। उस समय वह इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था कि वह उन अधिकारों का भरपूर भोग करता रहा। उसने इंग्लैण्ड में पोप के अधिकारों को भी सीमित कर दिया। पोप इंग्लैण्ड से अपने दृढ़ सम्बन्ध समझता था, परन्तु विलियम ने उसका प्रभाव देश के 'चर्च' पर भी नहीं रहने दिया। परिणाम यह हुआ कि देश के रईस पोप से मिलकर विलियम का विरोध करने लगे।

विलियम के पुत्र हेनरी प्रथम का विरोध उसके भाई राबर्ट ड्यूक ऑफ नारमण्डी ही करने लगा। उसके विरोध के परिणामस्वरूप हैनरी को राज्य-कर्मचारियों और रईसों से समझौता करना पड़ा। इस समझौते में हैनरी को अपने पिता के बहुत-से अधिकार छोड़ने पड़े। इससे रईसों और कर्मचारियों को अपनी शक्ति का ज्ञान हो गया और वे हैनरी प्रथम के उत्तराधिकारी से और फिर उसके उत्तराधिकारी से अधिक और अधिक अधिकार प्राप्त करने लगे। यह कुछ उसी प्रकार था, जैसे बौद्ध वर्ग अशोक के उत्तराधिकारियों से अधिक और अधिक अधिकार प्राप्त करते गए।

हैनरी प्रथम का उत्तराधिकारी स्टीफन जब 1135 में गद्दी पर बैठा तो इसका हैनरी की लड़की मटिल्डा ने विरोध किया और इससे रईसों को कुछ और अधिक अधिकार देने पड़े।

इस प्रकार परम्परा चल पड़ी। रईस (Barrons) प्रत्येक राजा के बदलने पर झगड़ा करते और बनने वाले राजा को कुछ अपने अधिकार छोड़ने पड़ते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिचर्ड प्रथम के 'क्रुसेड' में अग्र भाग लेने के कारण राज्य का खर्च बहुत बढ़ गया और उसे टैक्स बढ़ाने पड़े। इससे रईसों के साथ-साथ सौदागर भी सम्मिलित हो गए और 'क्रुसेड' पर जाने वाले सिपाहियों की विशेष भरती की जाने के कारण किसान भी रईसों के साथ सम्मिलित हो गए।

इस प्रकार पूर्ण प्रजा राजा के विपरीत होने लगी। आर्चबिशप ऑफ कैण्टर्बरी, ह्यबर्ट वाल्टर, विलियम मार्शल, ज्यौफ्रे फिट्ज़ पीटर इत्यादि ने राजा रिचर्ड की ओर से घोषणा कर दी कि यदि प्रजा साथ रहेगी तो वह उनको विशेष अधिकार देगा।

रिचर्ड उस समय फ्रांस में था और वह किसी प्रकार के विशेष अधिकार देने का विचार नहीं रखता था। इस पर भी उसके उत्तराधिकारी जोन को सन् 1215 में विवश होकर राज्यारोहण के पूर्व एक उदार अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े।

यह अधिकार पत्र 'मैग्नाकार्टा' के नाम से विख्यात हुआ। इस मैग्नाकार्टा में 63 धारायें हैं तथा उनमें राजा और रईसों के अधिकार निश्चय किए गए हैं। राजा और सौदागरों के अधिकार भी निश्चित किए गए। किसानों और जमींदारों के अधिकार भी निश्चय किए गए और साथ ही न्याय की भी व्यवस्था की गई।

इस 'मैग्नाकार्टा' में निर्धन, बेकारों और खेतों पर काम करने वाले कामों के अधिकारों का वर्णन नहीं है। इस पर भी जब राजा के अधिकार कम हुए और निर्बाध कर लगाने, सेना में भरती करने और सरकारी सेवकों की संख्या बढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगे तो सामान्य जनता को भी सुख-सुविधा प्राप्त हुई। सामान्य जनता की ये किंचित् मात्र सुविधाएँ राजा के रईसों और सौदागरों के अधिकारों पर रोक लगाने के लिए थीं। इसी प्रकार न्याय व्यवस्था के सुधार से भी सामान्य जनता को लाभ हुआ।

यद्यपि मैग्नाकार्टा किसी युक्तियुक्त विचार का परिणाम नहीं था; यह केवल रईसों, जमींदारों और सौदागरों के दबाव पर स्वीकार हुआ था; इस पर भी इसका प्रभाव पूर्ण जनता पर न्यूनाधिक हुआ था।

प्रश्न यह है कि राजा यह क्यों माना? केवल इसलिए कि वह जिनकी सहायता से राज्य प्राप्त और सत्ता रख सकता था उन पर करों का बोझा नियमित तथा कम कर दे। जो लोग उसकी सेना में भरती कराने में सहायक होते थे उनके अनियमित अधिकार सीमित हो गए। इससे वस्तुओं के भोक्ताओं को भी लाभ हुआ और निर्धन किसानों को भी सुविधा प्राप्त हुई।

इस मैग्नाकार्टा के गुण अथवा अवगुण किसी सिद्धान्त को सामने रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-R
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बनाए गए थे। ये केवल राजनीतिक विवशताओं और राज्य परिवार की आवश्यकताओं के दबाव का परिणाम ही थे। इसी कारण हम इसकी तुलना अशोक के मिलने वाले बौद्ध संरक्षण से करते हैं। बौद्ध और सामान्य जनता को सुविधाएँ मिली थीं राज्य की राजनीतिक उच्छृंखलता की रक्षा करने के लिए।

यहीं पर पृथु के काल के संविधान तथा किंग जोन के काल के संविधान में अन्तर है। पृथु के संविधान के बनाने वाले ऋषि लोग थे जो अपना किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रखते थे। अतः मैग्नाकार्टा से मानव समाज में विकृति ही आई है। उसके उपरान्त जहाँ-जहाँ भी किसी देश अथवा राज्य का संविधान बना है वहाँ स्वहितों से प्रेरित समाज के प्रभावी अंग अपने हितों की रक्षा करने में लगे रहे प्रतीत होते हैं।

यही दोष भारत के सन् 1949 के संविधान में प्रकट हुआ है। अंग्रेज यहाँ से गए अपनी दुर्बलता के कारण। कांग्रेस के हो-हल्ला करने वालों को अधिकार चाहिए था और जब संविधान बनने लगा तो अपने को सुरक्षित स्थान पर रखने के लिए संविधान में छिद्र रखने के प्रलोभन में फँस गए अथवा भूल कर बैठे। जो पीड़ित थे वे ही संविधान बनाने आ बैठे थे। उन्होंने अपने विचार से अपने सम विचार वालों की रक्षा का यत्न संविधान में किया है।

Central Library
167971
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

: 3 :

'मैग्नाकार्टा' के उपरान्त फ्रांस की क्रान्ति में भी यही दोष रहा है। इस क्रान्ति को उन लोगों का नेतृत्व प्राप्त हुआ था, जो पीड़ित थे। उन्होंने अपने कुछ नेता नियत किए थे, परन्तु जब पीड़ितों को पता चला कि गलती उनकी अपनी ही थी तो वे अनपढ़, अज्ञानी और स्वहित से प्रेरित होने के कारण अपने नेताओं की भी नहीं सुनते थे और प्रायः नेताओं को भी गुलेटीन पर चढ़ाने लगे थे।

हमारा निश्चित मत है कि परिवर्तन के समय यदि नेतृत्व विद्वानों के हाथ में हो तो परिणाम श्रेष्ठ होते हैं और यदि नेतृत्व पीड़ितों के हाथ में हो तो परिणाम प्रगति के विपरीत होते हैं।

पृथु के काल में राज्य परिवर्तन ऋषियों ने कराया था परन्तु 'मैग्नाकार्टा' के समय और फिर 1776 की फ्रांस की क्रान्ति में राज्य परिवर्तन सामान्य जनता के द्वारा हुआ था और नेता लोग जनता के पीछे लग गए थे। परिणाम भयंकर हुए थे।

तब एक बुद्धिमान् ओजस्वी और शौर्यवान् व्यक्ति नेपोलियन राजा बन गया।

तनिक उस काल के इतिहास पर मनन करें तो अशोक के व्यवहार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रांस की क्रान्ति में भी समानताएँ दिखाई देने लगेंगी। ये इस प्रकार हैं—

फ्रांस की क्रांति 1789 में 5 मई की इस्टेट्स (जाति के तीन अंगों—रईस, चर्च और सामान्य जनता) की मीटिंग से आरम्भ हुई कही जाती है।

परन्तु इस मीटिंग (सभा) की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? उसके अध्ययन से पता चलेगा कि तत्कालीन फ्रांस का राज्य परिवार अपने कारनामों से बहुत बदनाम हो चुका था। उस बदनामी से बचने के लिए राजा लूईस सोलहवें को यह सभा बुलानी पड़ी थी।

राजा लूईस सोलहवें की बदनामी और उसकी मलिका मेरी ऐन्टौयनैट की अविचारित वाणियों से प्रजा के उक्त तीनों अंग भड़क उठे थे। राजा और रानी की फ़ज़ूल खर्चियों और हिन्दुस्तान तथा पूर्वी देशों में हार रहे युद्धों के कारण राजा तथा राज्य बदनाम हो रहे थे। इस पर अमेरिका में इंगलैण्ड के विरुद्ध सफलता ने फ्रांस में उत्तेजना उत्पन्न कर दी थी। रईस राज्य को कर न देने की धमकी दे रहे थे जिससे राजा और राज्य भयभीत हो इस प्रकार के अंगों की सभा बुलाने पर विवश हो गए थे।

ऐसी ही एक सभा एक वर्ष पूर्व सन् 1788 में बुलाई गई थी। तब प्रजा के तीनों अंगों के तीन-तीन सौ प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। इस बार 1789 में भी राजा ने तीन-तीन सौ प्रतिनिधि ही रईसों, चर्च और सामान्य जनता के बुलाए परन्तु सामान्य जनता ने समाचार-पत्रों में छपी, अमेरिका की प्रजातांत्रिक राज्य प्रणाली, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का एक मत का प्रचार हो रहा था, के कारण केवल तीन-तीन सौ प्रतिनिधि पसन्द नहीं किए।

इस समय रईसों की फ्रांस में संख्या लगभग 4,00,000 थी। गिरजाघरों में पादरियों की संख्या 1,35,000 थी और सौदागरों तथा जन-साधारण की जनसंख्या भी लगभग 2,60,00,000 थी।

राजा लूईस ने तो तीनों वर्गों के बराबर 300-300 प्रतिनिधि बुलाए थे। उसका विचार था कि पादरियों और रईसों को कुछ सुविधाएँ देकर प्रजा की माँगों को दबा सकेगा। परन्तु देश में अमेरिका की स्थिति से प्रभावित समाचार-पत्रों में इतना हो-हल्ला मचाया गया कि जनसाधारण के प्रतिनिधियों ने अपनी संख्या बढ़ाने की माँग पर बल देना आरम्भ कर दिया। विवश हो राजा को मानना पड़ा कि जन-साधारण प्रतिनिधियों की संख्या 600 होगी। इस प्रकार जन-साधारण दो-चार मत पादरियों अथवा रईसों के अपनी ओर कर सभा में अपना बहुमत प्राप्त कर सकें, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई। यह राज्य के प्रधानमंत्री नैकर की सम्मति से हुआ था और नैकर साधारण जनता में सर्वमान्य हो गया। रईस और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादरी इससे नाराज हो गए तो राजा ने नैकर को पदच्युत कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सामान्य लोगों का रोष उग्र हो गया और पैरिस में जनता ने पैरिस के ऐतिहासिक किले वैस्टाईल पर आक्रमण कर दिया। वैस्टाईल किसी काल में राजसी बंदियों का जेलखाना था। इस कारण यह एक बदनाम किला माना जाता था। इसमें सैनिक कैदी भी रखे जाते थे। इस कारण जब राजा ने इसकी रक्षा के लिए सेना भेजी तो सेना भी इसकी रक्षा करने के स्थान जनता द्वारा इसको नष्ट करने में सहयोग देने लगी।

प्रजा के तीन अंगों की सभा तो वारसेल्ज में हो रही थी और वहाँ झगड़ा हो रहा था कि प्रजा के तीनों अंग इकट्ठे बैठकर विचार करें अथवा पृथक्-पृथक्। पहले तो पादरियों और रईसों ने इकट्ठे बैठना स्वीकार नहीं किया, परन्तु पीछे वे मान गए। सर्व-साधारण प्रजा के प्रतिनिधि हठ कर रहे थे कि वे तब तक विचार नहीं होने देंगे, जब तक तीनों एक ही स्थान पर बैठकर बातचीत नहीं करेंगे। छः सप्ताह तक यह विवाद चलता रहा। सामान्य प्रजा के प्रतिनिधि किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं होने देते थे, जब तक प्रजा के तीनों अंग एक स्थान पर बैठकर विचार नहीं करते।

आखिर रईस और पादरी माने तो तीनों की बैठक हुई और तीनों अंगों नागरिक, रईस और पोनियरै, ने गैबरील के नेतृत्व में इकट्ठे बैठ यह घोषणा की कि वह कौमी असैम्बली (National Assembly) है। जब 17 जून 1789 को यह घोषणा की गई तो राजा ने इस निर्णय को रद्द कर दिया और नैकर को पदच्युत कर दिया। इससे रुष्ट होकर ही जनता ने 17 जुलाई को वैस्टाईल को विनष्ट किया था। इसमें सेना भी सम्मिलित हुई तो राजा डर गया और उसने नैकर को पुनः प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया तथा कौमी असैम्बली को स्वीकार कर लिया।

इससे जनता का साहस और बढ़ गया। राजा ने कुछ विदेशी सैनिकों की सहायता से सभा में 'कौमी असैम्बली' का विरोधी पक्ष खड़ा करना चाहा, तो सामान्य जनता ने राजा के महल को घेर लिया और राजा तथा रानी का घेरा तब ही उठाया जब वे वारसेल्ज से पैरिस जाने के लिए तैयार हो गए। वहाँ वास्तव में वे एक बंदी के रूप में रहने लगे।

आरम्भ में तो 'नैशनल असैम्बली' का विचार यह था कि राजा सर्वसत्ता सम्पन्न न रहकर सीमित अधिकार वाला शासक रहे, परन्तु राजा अपने अधिकारों को छोड़ने को तैयार नहीं होता था।

राजा और प्रजा के अधिकारों में बँटवारा होने लगा तो कुछ इसमें राजा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि असैम्बली में ही विरोध उत्पन्न हो गया।

जनता का साहस वैस्टाईल विध्वंस कर सकने से बढ़ गया था। वह यह समझी थी कि जो बात वह युक्ति से नहीं मनवा सकती, वह बात हिंसा से मनवा सकती है। अतः असैम्बली के नेताओं की हत्याएँ होने लगीं।

इससे असैम्बली में और जनता में गुटबंदी हो गई और जिस गुट का बल असैम्बली में बढ़ जाता, वह विरोधी और कम अनुयायियों वाले नेताओं की हत्या कर देता था। यह हत्याक्रम एक बार आरम्भ हुआ तो फिर रुक नहीं सका और राजा-रानी भी इसमें ही मार डाले गए।

हत्याओं की संख्या इतनी बढ़ी कि सिर काटने के लिए जल्लाद मिलने कठिन हो गए। तब एक मशीन का निर्माण किया गया जो एक क्षण में एक आदमी की हत्या कर देती थी और दिन में सैकड़ों को इस मशीन (गुलेटीन) के द्वारा मौत के घाट उतारा जाने लगा।

परन्तु स्थिति के इस सीमा तक पहुँचने से ही पहले और राजा-रानी के गुलेटीन पर मारे जाने से पूर्व ही नैशनल असैम्बली ने फ्रांस का प्रथम संविधान बना लिया था। यह संविधान सितम्बर 1791 में पारित हुआ था। उस संविधान की कुछ धाराएँ इस प्रकार थीं—

1. मानव अधिकारों में—देश छोड़ने अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने की स्वतंत्रता तथा अर्जी करने की स्वतंत्रता दी गई। मज़हबी शपथें और व्यापारिक गिल्ड बन्द कर दिए गए। निर्धनों की रक्षा और शिक्षा का प्रबन्ध तथा सम्पत्ति खरीदने के नियम बनाए गए।
2. देश को नये प्रान्तों में बाँटा गया। नये जिले बनाए गये और उनके शासक नियुक्त किए गए।
3. विदेशियों को आकर बसने की सुविधाएँ दी गईं।
4. शासन अधिकारियों की सामर्थ्य सीमित की गई। राजा और मंत्री भी इसमें सम्मिलित किए गए। सेनेटरों और मंत्रियों के अधिकार भी लिखे गए।
5. सेना, नौसेना के प्रबन्ध का विधान किया गया।
6. कानून बनाने की सभा में 745 सदस्य रखे गए जो दो वर्ष से पहले निकाले नहीं जा सकते थे।

अपनी ओर से यह संविधान बहुत पूर्ण समझा गया था, परन्तु जब उग्रवादियों ने हिंसा आरम्भ की तो सब कुछ धरा का धरा रह गया। संविधान यह था कि इसके बनने के दस वर्ष तक इसको बदला नहीं जा सकेगा। परन्तु इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व बहुत काल तक नहीं रह सका।

जनता और असैम्बली में उग्रवादी भी थे। वे फ्रांसीसी क्रान्ति को पूर्ण यूरोप में ले जाने का यत्न करने लगे। इस पर फ्रांस के राजा लूईस ने भी विदेशी राजाओं से समझौते के लिए बातचीत करनी चाही। इसके लिए आस्ट्रिया का सम्राट उसकी सहायता करने का यत्न करने लगा। फ्रांस की महारानी मेरी ऐन्टौयनैट आस्ट्रिया के ही राज्य परिवार की लड़की थी। अत: यह स्वाभाविक भी था।

आस्ट्रिया की सेनाएँ फ्रांस की सीमा राईन नदी के किनारे एकत्रित होने लगीं तो लोग लूईस से पूछने लगे कि वह आस्ट्रिया के सम्राट की सहायता चाहता है क्या? लूईस ने मूर्खतावश घोषणा कर दी कि सम्राट उसकी रक्षा के लिए आ रहा है।

इस पर पैरिस के उग्रवादी भड़क उठे। संविधान में इस स्थिति पर काबू पाने का कोई प्रबन्ध नहीं था। सेना राजा के अधीन थी, परन्तु उनका वेतन इत्यादि असैम्बली टैक्सों से देती थी और रुपया आ नहीं रहा था। इससे सेना भूखी मर रही थी। अन्न, वस्त्र, शस्त्र और सैनिकों के वेतन जुटाने में कठिनाई हो रही थी।

ऐसी स्थिति में संविधान टूटना ही था और परिणामस्वरूप उग्रवादियों ने गुलेटीन लगा हत्याएँ करनी आरम्भ कर दीं।

लूईस द्वारा आस्ट्रिया के सम्राट के हस्तक्षेप को पसन्द करने पर उसे तथा उसकी मलिका को गुलेटीन का शिकार बनना पड़ा। उन पर देश-द्रोह का मुकद्दमा करने का बहाना किया गया और उन्हें मृत्यु-दण्ड दे दिया गया।

इस दण्ड दिये जाने के उपरान्त फ्रांस पर आस्ट्रिया की और इटली की सेनाओं ने आक्रमण कर दिया। इंग्लैण्ड ने समुद्र में नाकाबन्दी कर दी। ऐसी अवस्था में जातीय रक्षा के लिए सेनाएँ सीमा पर भेजी गईं।

इस समय नेपोलियन एक लैफ्टिनैंट के पद पर था। उसे इटली की सेना के विरुद्ध सेना का सेनापति बनाकर सीमा पर भेजा गया। वहाँ नेपोलियन की सेना को चमत्कारी सफलता मिली। बीसियों मोर्चों पर वह इटली की सेनाओं को वापस अपने देश को भगा देने में सफल हुआ। उसकी इस सफलता ने उसमें राजनीति में कूदने का साहस उत्पन्न कर दिया और वह प्रथम कौंसिलर अर्थात् प्रधानमंत्री बन गया। यह 1801 में हुआ और इसके उपरान्त उसने कौंसिलरों के चुनाव का ढंग बदल दिया। चुने हुए प्रतिनिधियों में से चुनने का उसने ढंग (Indirect election) बनाया और 1804 में वह प्रजा का सम्राट (Emperor) बन गया।

इस प्रकार 1789 में आरम्भ हुई क्रान्ति समाप्त हुई। इससे बोरबोर्न परिवार का राज्य बोनापार्ट परिवार के हाथ में चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: 4 :

अब फ्रांस की इस क्रान्ति की तुलना उस क्रान्ति से करेंगे जो अशोक ने सम्पन्न की थी, जब उसने भारत में बौद्ध सम्प्रदाय को सामान्य जनता पर उपमा दी थी। अशोक की क्रान्ति फ्रांस की 1789 की क्रांति से अधिक काल तक स्थिर रही थी। फ्रांस की यह प्रथम क्रान्ति 1789 से चलकर 1804 में समाप्त हो गई और एक सम्राट के स्थान दूसरा सम्राट आ गया। परन्तु भारत में अशोक की सन्तान का राज्य साठ वर्ष के लगभग अशोक के उपरान्त रहा।

बौद्ध साम्राज्य उतना ही अन्यायपूर्ण और अनिश्चित था जितना कि क्रान्ति के उपरान्त फ्रांस का था, परन्तु दोनों में अन्तर भी था। जहाँ बौद्ध राज्य में हत्याएँ नहीं होती थीं, वहाँ फ्रांस की क्रान्ति में लाखों नहीं तो सहस्त्रों ही मृत्यु के घाट उतारे गए थे। अशोक के राज्य में शारीरिक हिंसा नहीं हुई, मानसिक परिवर्तन का ही यत्न होता रहा। इस कारण बौद्ध साम्राज्य का विरोध भी मानसिक प्रेरणा से हुआ था। यही कारण है कि विचारों का संघर्ष चला था। इसमें हत्याएँ नहीं विचारों का परिवर्तन करने का यत्न किया गया था, दोनों पक्षों से, बौद्ध सम्प्रदाय की ओर से भी, ब्राह्मण सम्प्रदाय की ओर से भी। और इसी कारण अशोक की सन्तान में जब जयद्रथ राज्य कर रहा था तथा उसने विदेशीय आक्रमण का विरोध नहीं किया था और उसके सेनापति पुष्यमित्र ने सेना के सम्मुख ही जब राजा की हत्या की तो सेना हत्यारे के पक्ष में हो गई थी। किसी एक ने भी इस हत्या पर आपत्ति नहीं की थी।

इस पर भी परिणाम वही हुआ जो कालान्तर में फ्रांस की क्रान्ति का हुआ था।

बौद्ध राज्य को समाप्त कर ब्राह्मण साम्राज्य स्थापित हुआ समुद्रगुप्त के राज्य में, परन्तु वह बात नहीं आ सकी जो चन्द्रगुप्त के राज्य से पहले थी। अशोक के निधन तक भी भारत पर कोई आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका था। यद्यपि देश में छोटे-छोटे राज्य थे, परन्तु देश सामूहिक रूप से इतना सबल था कि सिकन्दर जैसा विजेता भी देश में प्रवेश नहीं कर सका। यूनान के लेखक कहते हैं कि सिकन्दर व्यास नदी के पश्चिमी तट तक ही पहुँच सका था। ईरान और भारतीय लेखों से तो कुछ ऐसा अनुमान निकलता है कि सिकन्दर झेहलम नदी के पश्चिमी किनारे से ही राजा पोरस को पराजित न कर सकने के कारण लौट गया था।

यह भी सम्भव है कि झेहलम नदी का संस्कृत नाम वतिष्ता हो और उसी को गलतीं से यूनानी व्यास लिख गए हों। उस समय देश में छोटे-छोटे राज्य थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर भी देश अति शक्तिशाली था।

समुद्रगुप्त एक विशाल साम्राज्य का स्वामी था परन्तु वह भी शकों को देश से निकाल नहीं सका था। शकों का निष्कासन समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने आरम्भ किया था और लगभग 137 वर्ष लगे थे उनको निकालने में।

कुछ ऐसा ही परिणाम फ्रांसीसी क्रान्ति का हुआ था। पहले तो नेपोलियन के राज्य में फ्रांस को विजय मिलती रही, परन्तु अन्त में फ्रांस यूरोप में एक निम्न कोटि का देश बन गया।

हमारा निश्चित मत है कि 1791 का फ्रांस का संविधान अनपढ़ और अज्ञानियों का बनाया हुआ था और उस संविधान से देश में घोर अन्याय और अव्यवस्था की सृष्टि हुई।

नेपोलियन 1814 में पराजित हो कोरसिकों में बंदी बनाया गया। 1815 में वह वहाँ से भाग पुनः फ्रांस में आया, परन्तु 100 दिन के उपरान्त वह पुनः पराजित कर बंदी बनाया गया। उसके उपरान्त बौरबौर्न परिवार का राज्य 1842 तक चला। पुनः कुछ काल के लिए बोनापार्ट के परिवार का राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार दस-पन्द्रह वर्ष के उपरान्त उथल-पुथल मचती रही और वह उथल-पुथल अभी भी चली आती है। फ्रांस का शासन एक विभिन्न विचारों की राजनीतिक पार्टियों के संयोग से बनी पार्लियामेंट के अधीन चल रहा है।

योरुप की ऐसी ही अवस्था है। 1932 में हिटलर ने जर्मन साम्राज्य स्थापित करने का यत्न किया। हिटलर की धूम 1945 तक रही और अन्त में उसे आत्महत्या करनी पड़ी। इसके साथी मित्र राष्ट्रों ने बंदी बना लिये।

प्रथम विश्व-युद्ध के उपरान्त यूरोप में एक नवीन शक्ति, कम्यूनिज़्म उत्पन्न हुई और पूर्वी यूरोप के बहुत बड़े भाग पर यह अधिकार जमा बैठी है।

: 5 :

इस समय यूरोप दो गुटों में विभक्त है। एक गुट है कम्युनिस्ट। इसका नेता रूस है। दूसरा गुट कहाता है 'नाटो' (Nations around Atlantic)। इसका नेता अमेरिका बना हुआ है। दोनों गुट एक-दूसरे के घोर विरोधी होते हुए भी एक-दूसरे की खेती में मुख डालने से डरते हैं। इस पर भी 1945 से पूर्ण यूरोप में एक भयावह स्थिति बनी हुई है। कम्युनिस्ट गुट नाटो गुट से शक्तिशाली प्रतीत हो रहा है।

सन् 1945 में एक भूमण्डलीय संस्था की स्थापना हुई थी। इसे 'संयुक्त राष्ट्र संघ' (UNO) कहते हैं। इसका आरम्भ तो बहुत धूमधाम से हुआ था परन्तु ज्यों-ज्यों इसकी सदस्य संख्या बढ़ती जाती है यह एक 'बैनल के बुर्ज' का नमूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनता जाता है। इस संस्था के प्रतिबन्धों को मानने के स्थान उनका भंग अधिक किया जाने लगा है।

इतना तो है कि संस्था की स्थापना ठीक दिशा में एक मानव-प्रयास था। परन्तु सब मानवीय कार्यों की भाँति यह भी अधूरा और अव्यावहारिक रहा है।

शान्ति स्थापना के लिए भले तथा बुरे लोगों को सम्मिलित कर सांझा मोर्चा बनाना एक उपाय माना जाता है। यही मानवीय प्रयासों में दुर्बलता है। इस प्रकार सब प्रजातंत्रात्मक प्रयास परस्पर विग्रह की चट्टान पर नष्ट हो जाते हैं। यही संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास का परिणाम होगा। इससे पहले इसी परस्पर विरोधी हितों की चट्टान पर टकरा कर 'लीग ऑफ नेशन्स' समाप्त हुई थी।

इसका संक्षिप्त वृत्तान्त लिखकर इसकी त्रुटियों तथा उनके कारण बताने का हम यत्न करेंगे।

भूमण्डल के राज्यों की एक संयुक्त संस्था जिसमें अन्तर्देशीय झगड़े निपटाए किए जा सकें, बनाने का विचार बहुत पुराना है। इसका श्रीगणेश अन्तर्देशीय न्यायालय बनाने से हुआ था, जिसका मुख्यालय जनेवा नियत किया गया था। इस पर भी यह न्यायालय राजनीतिक विशेषताओं से दबा रहता था।

तदनन्तर 1919 में प्रथम विश्व-युद्ध के विजेताओं ने एक संस्था 'लीग ऑफ नेशन्स' स्थापित की। इसके होते हुए भी हिटलर ने इसका विरोध करना आरम्भ किया तो पुनः विश्व-युद्ध हुआ और यह संस्था भंग करनी पड़ी।

कुछ लोग कहते हैं कि लीग ऑफ नेशन्स के असफल होने का कारण यह था कि 1914-18 के विश्व-युद्ध में पराजित जर्मनी पर विजयी जातियों ने इतना बोझा डाल रखा था कि जर्मन जाति की उन्नति अवरुद्ध होने लगी थी। यह संस्था 1939 में भंग हो गई और द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया।

हम ऐसा नहीं मानते। हमारे विचार में दोष उन प्रतिबन्धों का नहीं जो जर्मनी पर लगाये गये थे, वरन् मित्र राष्ट्रों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा उन प्रतिबन्धों की निन्दा थी। दुष्टों पर प्रतिबन्ध होने ही चाहिएँ। उन प्रतिबन्धों को हटाने के स्थान इनको लगाने के साथ-साथ एक उदार प्रक्रिया घोषित करनी चाहिए थी।

लीग ऑफ नेशन्स के निर्णयों के कारण सबसे पहले अमेरिका इससे पृथक् हुआ था। लीग ऑफ नेशन्स के दो प्रमुख सदस्य इंग्लैण्ड और फ्रांस के अपने राज्य ऐसे ढंग पर चल रहे थे कि वे कोई भी कार्य समय पर नहीं कर सकते थे। अतः 'लीग ऑफ नेशन्स' का विवाद फ्रांस और इंग्लैण्ड के घर का विवाद बन गया। साथ ही रूस में क्रान्ति हो गयी। रूस प्रथम विश्व-युद्ध का एक विजेता देश था। यह क्रान्तिमय देश लीग ऑफ नेशन्स में आरम्भ से ही सम्मिलित नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था। युद्ध की समाप्ति से एक वर्ष पूर्व ही रूस जर्मनी से बहुत बड़ा युद्ध का हर्जाना ले युद्ध से तटस्थ हो चुका था।

अमेरिका के लीग ऑफ नेशन्स के पृथक् हो जाने पर इसमें रह गए इंग्लैण्ड और फ्रांस के अतिरिक्त यूरोप के कुछ टटपूँजिए देश, जिनकी आवाज़ इंग्लैण्ड और फ्रांस समय-समय पर खरीदते रहते थे।

इन दोनों—फ्रांस और इंग्लैण्ड देशों की पार्लियामेंट में नेतागीरी का भारी विवाद रहता था। दोनों देशों में प्रजातंत्रात्मक राज्य प्रणालियाँ हैं जिनमें प्रभुता का मापदण्ड विद्वत्ता, योग्यता तथा चरित्र नहीं, वरन् जनता के अधिक मत प्राप्त करना होता है।

हम समझते हैं कि इन दोनों मुख्य देशों ने अपने देशों में मिथ्या धारणाओं के कारण अपने देश में भी और फिर लीग ऑफ नेशन्स में भी किसी स्थिर युक्तियुक्त नीति पर किसी भी विषय पर निर्णय नहीं लेने दिया। परिणामस्वरूप 1939 में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा होते ही 'लीग ऑफ नेशन्स' का विघटन करना पड़ा। इसके उपरान्त, लीग ऑफ नेशन्स के स्थान पर बना संयुक्त राष्ट्र संघ। इस संस्था की घोषणा 1 जनवरी 1942 में वाशिंगटन में हुई, जिसमें मित्र राष्ट्रों ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा की थी। इस युद्ध में रूस को मित्र राष्ट्रों में सम्मिलित होने पर विवश होना पड़ा और फिर जापान के पर्ल बन्दरगाह पर आक्रमण ने अमेरिका को भी मित्र राष्ट्रों में सक्रिय रूप से सम्मिलित होने पर विवश कर दिया। अमेरिका के प्रधान रूज़वैल्ट और चर्चिल की ऐटलांटिक चार्टर की घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण में एक पग बन गई।

ऐटलांटिक चार्टर में ये शब्द इस भूमण्डलीय संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ का बीज मानने चाहिएँ। शब्द थे—

"All the nations of the world, for realistic as well as spiritual reasons must come to the abandonment of the use of force."

(संसार के सब राष्ट्रों का, स्वरक्षा एवं आध्यात्मिक कारणों से, इस निश्चय पर पहुँचना आवश्यक है कि वे अपनी बात मनाने के लिए बल का प्रयोग छोड़ें।) इसी प्रलेख में यह भी कहा है कि—

Pending the establishment of a wider and permanent system of general security, the disarmament of aggressor nations is essential.

(विस्तृत तथा स्थायी सामान्य सुरक्षा के प्रबन्ध होने तक यह आवश्यक है कि आक्रान्ता राष्ट्रों को शस्त्रविहीन किया जाए।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी घोषणा-पत्र में रूज़वैल्ट और चर्चिल सहमत थे कि भूमण्डल पर से निर्धनता दूर करनी है और यह आर्थिक सहयोग से ही सम्भव है। इन घोषणाओं के आधार पर वर्तमान संयुक्त राष्ट्र संघ की रूपरेखा बनी।

तदनन्तर मास्को में 30 अक्टूबर, 1943 में रूस, चीन, इंग्लैण्ड और अमेरिका की ओर से यह घोषणा की गई कि यद्यपि मित्र राष्ट्रों की विजय हो रही है परन्तु अभी भी जीवन-मौत का संघर्ष चल रहा है। युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरान्त संयुक्त सुरक्षा के प्रबन्ध पर विचार किया जाएगा।

इसी घोषणा में, जो मास्को में की गई, ये शब्द भी थे—

"They recognize the necessity of establishing at the earliest practicable date a general international organization, based on the principal of soverign equality of all peace loving states, and open to membership by all such states, large and small, for the maintenance of international peace and security."

(वे [घोषणा करने वाले अमेरिका, रूस, चीन और इंग्लैंड] मानते हैं कि आवश्यकता है शीघ्रातिशीघ्र एक अन्तर्देशीय संस्था के स्थापन की, जो सम्मिलित होने वाले शान्तिप्रिय राष्ट्रों चाहे बड़े हों चाहे छोटे, की सहायता के लिए खुली रहेगी जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनी रह सके।)

इसके उपरान्त दिसम्बर 1943 में तेहरान में रूज़वैल्ट, स्टालिन और चर्चिल ने यह घोषणा की कि मित्र राष्ट्र ऐसी शान्ति चाहते हैं जिसमें पूर्ण भूमण्डल के शान्तिप्रिय लोगों की सहमति हो।

इस प्रकार इस यू० एन० ओ० की स्थापना का रूप बनाते-बनाते 1944 में यूनाइटिड किंग्डम (अंग्रेजी साम्राज्य), अमेरिका और चीन के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान का प्रारूप तैयार किया।

यह प्रारूप बिना विशेष परिवर्तनों के 25 अप्रैल, 1945 में सान-फ्रांसिस्को में पारित किया गया। उस समय केवल साठ राष्ट्र इसमें सम्मिलित हुए थे परन्तु धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती गई और अब 160 से ऊपर है।

हमारी इस पुस्तक का सम्बन्ध इस यू०एन०ओ० द्वारा स्वीकार किये गए मानवीय अधिकार-पत्र से है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने उसे एक नमूने का मानव अधिकार-पत्र स्वीकार किया है।

: 6 :

संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से मानवीय अधिकारों के लिए 20 दिसम्बर, 1948 को की गई घोषणा के विषय में कहा गया कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. इस मानव परिवार में सब राष्ट्र सदस्यों की स्वाभाविक मान-प्रतिष्ठा के अनुसार और न कम किए जाने वाले अधिकारों को स्वीकार करते हुए भू-मण्डल में स्वतन्त्रता, न्याय और शान्ति की व्यवस्था करनी है;
2. क्योंकि मानवीय अधिकारों की अवहेलना की गई है और उनकी ओर घृणा से देखा गया है जिसके परिणामस्वरूप ऐसे बर्बर कर्म किए गए हैं कि उनसे मानव समाज की आत्मा उत्पीड़ित हो उठी है, और क्योंकि ऐसी दुनिया को लाना है जिसमें वाणी की स्वतन्त्रता, विश्वासों की स्वतन्त्रता, भय से स्वतन्त्रता और अभाव से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए आकांक्षा घोषित की जा चुकी है;
3. क्योंकि यदि मनुष्य की अंतिम साध—नृशंसता और विवशता से विद्रोह करने के लिए विवश न करना आवश्यक है, तो नियमित राज्यों द्वारा मानवीय अधिकारों की रक्षा करनी होगी;
4. क्योंकि यह आवश्यक है कि भूमण्डल के राष्ट्रों में मित्रता के सम्बन्ध बढ़ाए जाएँ;
5. क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ के लोगों ने अपने 'चार्टर' में अपना विश्वास आधारभूत मानवीय अधिकारों में और मानव के मन में, मानव-जीवन के मूल्यों में और पुरुष-स्त्री की समानता में घोषित किया है और प्रगति तथा मानव आवश्यकताओं में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संकल्प किया है;
6. क्योंकि इस संस्था के सदस्य राष्ट्रों ने शपथ ली है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सहयोग से परस्पर मान प्रतिष्ठा का बर्ताव करेंगे और आधारभूत स्वतन्त्रताओं को स्वीकार करेंगे;
7. और क्योंकि इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की समान धारणा को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है जिससे शपथ का भली प्रकार पालन हो सके,

इस कारण हम यह घोषणा करते हैं कि—

घोषणा

सार्वभौमिक अधिकारों की यह घोषणा, सब मानवों के लिए और राष्ट्रों के लिए समान मापदण्ड प्राप्त करने के लिए है, जिससे व्यक्ति तथा समाज का प्रत्येक अंग, इस घोषणा को निरन्तर मन में रखते हुए, शिक्षा देकर, समझाकर इन अधिकारों का मान बढ़ा सके; साथ ही जातीय एवं अन्तर्जातीय प्रभावी मान्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और व्यवहार, अपने और इस संस्था के अन्य सदस्यों और अपने अधीन लोगों तथा जातियों को दिला सके।

धाराएँ

1. सब मानव, प्रतिष्ठा और अधिकारों के भोग के लिए स्वतन्त्र और समान उत्पन्न हुए हैं। सब में बुद्धि तथा चेतना उपस्थित होती है। अतः उनको परस्पर भ्रातृभाव की भावना से व्यवहार करना चाहिए।
2. प्रत्येक व्यक्ति बिना जाति, रंग, लिंग, भाषा, मज़हब, राजनीतिक अथवा अन्य विचारों के अथवा सामाजिक स्तर के आधार पर अब अधिकारों और स्वतन्त्रताओं, जो इस घोषणा में वर्णन की गई हैं, का अधिकारी है।

   साथ ही राजनीतिक सत्ता अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर किसी देश के व्यक्ति होने पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा; भले ही वह देश स्वतन्त्र, किसी की रक्षा में, किसी के अधीन अथवा किसी अन्य प्रकार के शासकीय प्रतिबन्धों में हो।
3. प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है कि वह जिये, स्वतन्त्र रहे और सुरक्षित रहे।
4. कोई व्यक्ति दासता अथवा सेवा में रोका नहीं जा सकता। दासता और दासता का धंधा सब रूपों में वर्जित होगा।
5. किसी को यंत्रणा (torture) नहीं दी जाएगी अथवा निर्दयतापूर्ण अपमानजनक व्यवहार अथवा दण्ड नहीं दिया जाएगा।
6. न्याय के समक्ष प्रत्येक मनुष्य का अधिकार होगा कि वह मानव समझा जाए।
7. सब मनुष्य न्याय के समक्ष बराबर हैं। सब समान रूप में बिना भेद-भाव के न्याय का संरक्षण पाने का अधिकार रखते हैं। सबको अधिकार है कि इस घोषणा के विपरीत भेदभाव से रक्षा और ऐसे भेदभाव को उकसाने वालों से रक्षा प्राप्त करें।
8. प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि उचित न्यायपीठ से अपने आधारभूत अधिकारों अथवा कानून और संविधान से प्राप्त अधिकारों के विरोध से रक्षा प्राप्त करे।
9. कोई अकारण, बिना जाँच के पकड़ा, रोका अथवा देश से निकाला नहीं जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. सब मानवों को अधिकार होगा कि वे सब के समान समझे जाएँ; उनके अधिकारों के निर्णय के लिए स्वतंत्र और निष्पक्ष अदालत में सबके सामने न्याय किया जाए।

11.(अ) प्रत्येक व्यक्ति जो किसी अपराध में पकड़ा जाए, तब तक निरपराधी माना जाएगा जब तक वह किसी निष्पक्ष अदालत में खुलेआम रक्षा का अवसर प्राप्त कर, दोषी सिद्ध न हो जाए।

(आ) कोई व्यक्ति किसी अधर्म का अपराधी नहीं माना जाएगा जब तक वह अपने देश की तत्कालीन धर्म-व्यवस्था (Penel Code) के नियम अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के विरुद्ध न हो अथवा न कहे। न ही कानून द्वारा निश्चित से अधिक उसे दण्ड दिया जाएगा।

12. किसी व्यक्ति के उसके गोपनीय व्यवहार (Privacy), परिवार तथा घर अथवा पत्र-व्यवहार में अवैधानिक बाधा अथवा हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। उसकी मान और प्रतिष्ठा पर आघात से रक्षा की जाएगी।

13.(अ) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सीमाओं में चलने-फिरने की तथा रहने की स्वतन्त्रता होगी।

(आ) प्रत्येक व्यक्ति को कोई भी देश (इसमें अपना देश भी है) छोड़ने और अपने देश को वापस आने का अधिकार होगा।

14. यह अधिकार भंग नहीं किया जाएगा यदि उसके विरुद्ध किसी राजनीतिक अपराध के अतिरिक्त मुकद्दमा नहीं चल रहा होगा अथवा किसी संयुक्त राष्ट्र के संघ के सिद्धांतों का विरोध नहीं हो रहा होगा।

15.(अ) प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि वह किसी राष्ट्र का अंग हो।

(आ) किसी को अवैधानिक ढंग से किसी राष्ट्रीयता से वचित नहीं किया जाएगा, न ही राष्ट्रीयता बदलने से मना किया जाएगा।

16.(अ) प्रत्येक व्यक्ति को स्वत: अथवा दूसरे के साथ मिलकर सम्पत्ति रखने का अधिकार होगा।

(आ) अवैधानिक ढंग से किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति छीनी नहीं जा सकेगी।

17.(अ) सब वयस्क पुरुष-स्त्री बिना किसी नसल (Race), राष्ट्रीयता अथवा मज़हब के, विवाह करने का अधिकार रखते हैं और परिवार स्थापित कर सकते हैं। वे विवाह के और विवाहित जीवन तथा तलाक के जीवन में बराबर अधिकार रखने के अधिकारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ) विवाह, वर-वधू की स्वेच्छा और पूर्ण स्वीकृति से हो सकेगा।

(इ) परिवार एक प्राकृतिक और आधारभूत समाज की इकाई है और इसका (परिवार का) अधिकार है कि समाज और राज्य से संरक्षण प्राप्त करे।

18. व्यक्ति को विचार करने की, अपनी आत्मा की आवाज़ (Conscience) की और मज़हब की स्वतंत्रता रहेगी। इस अधिकार में यह स्वतंत्रता भी सम्मिलित है कि वह स्वयं अथवा किसी दूसरे के सहयोग से, सार्वजनिक रूप में अथवा निजी रूप में अपना मज़हब तथा विश्वास शिक्षा से तथा व्यवहार से प्रकट कर सके।

19. प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह किसी विषय पर अपने विचार रखे और उनको प्रकट करे। इस अधिकार में यह भी सम्मिलित है कि उसे अपने विचार प्रकट करने की, बिना बाधा के विचार रखने की, सूचना प्राप्त करने अथवा सूचना देने और विचारों के प्रसार की, किसी भी साधन से देश की सीमाओं के पार भी स्वतंत्रता है।

20.(अ) प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति से दूसरों से मिल-बैठने की स्वतंत्रता होगी।

(आ) किसी को बलपूर्वक किसी की संगत स्वीकार करने पर विवश नहीं किया जाएगा।

21.(अ) प्रत्येक को अधिकार होगा कि वह अपने देश की सरकार में भाग ले सके, सीधे रूप में अथवा अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा।

(आ) अपने देश में सरकारी सेवाओं में सबका समान अधिकार होगा।

(इ) जनता की इच्छा सरकार की सत्ता का आधार होगा। इस इच्छा का प्रकटीकरण समय-समय पर होने वाले शुद्ध निर्वाचनों से होगा जो गुप्त अथवा खुले रूप में होंगे।

22. समाज का घटक होने के नाते प्रत्येक को अधिकार होगा कि उसकी सामाजिक सुरक्षा बनी रहे। वह अपने समाज, राज्य और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार, जो मानव की मान प्रतिष्ठता के लिए उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं, प्राप्त करे।

23.(अ) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा क़ि वह अपने मनपसन्द का कार्य कर सके। न्याययुक्त और अनुकूल स्थितियों में कार्य हो और बेकार रहने पर रक्षा प्राप्त कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आ) समान काम के लिए समान वेतन बिना भेदभाव के प्राप्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है।

(इ) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार प्राप्त होगा कि वह अपनी सुरक्षा के लिए कर्मचारी संघ (Trade union) बना सके और उसका सदस्य बन सके।

24. प्रत्येक को अधिकार प्राप्त होगा कि वह आराम और अवकाश, जिसमें काम करने के घण्टे की सीमा भी है और समय-समय पर छुट्टी भी सम्मिलित है, पा सके।

25.(अ) स्वास्थ्य और जीवन-स्तर के लिए और परिवार के लिए जिसमें अन्न, वस्त्र, मकान और चिकित्सा की सुविधा और आवश्यक सामाजिक सुरक्षा सम्मिलित है, पाने का अधिकार है। साथ ही बेकारी की अवस्था में, बीमारी की अवस्था में, विधवा होने की अवस्था में, वृद्धावस्था में और अन्य स्थितियों में जीविका के अभाव में, जो उसके वश की न हों, रक्षा पाने का अधिकार है।

(आ) प्रत्येक स्त्री प्रसव काल में और बाल्यावस्था में विशेष देख-रेख और सहायता की अधिकारी है। सब बच्चों को, विवाहित माँ से अथवा अविवाहित माँ से, समान रूप से सुविधा और सुरक्षा प्राप्त करने के अधिकार होंगे।

26.(अ) प्रत्येक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारम्भिक और आधारभूत अवस्था में निःशुल्क और अनिवार्य होगी। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सामान्य रूप में उपलब्ध होगी और उच्च शिक्षा योग्यता के आधार पर सबके लिए उपलब्ध होगी।

(आ) शिक्षा मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिए कार्यरत की जाएगी। इससे मानव अधिकारों को और स्वाभिमान को समर्थन मिलेगा। यह परस्पर समझने और सहन करने तथा मित्र भाव उत्पन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, मज़हबी एवं जातीय गुटों में शान्ति रखने के लिए तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की शान्ति स्थापित करने में सहायता के लिए होगी।

(इ) बच्चे के माता-पिता को मुख्य अधिकार है कि उसके लिए शिक्षा का प्रकार चुनें।

29.(अ) समाज के सांस्कृतिक जीवन में खुलकर भाग लेने का अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक व्यक्ति को है जिससे वह कला का भोग कर सके और वैज्ञानिक विकास एवं उसके लाभों को प्राप्त कर सके।

(आ) प्रत्येक व्यक्ति अपने किसी वैज्ञानिक, साहित्यिक और कलात्मक कृति से होने वाली ख्याति तथा आर्थिक लाभ की रक्षा का अधिकार रखता है।

28.(अ) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह इस घोषणा से उपलब्ध अधिकार और स्वतंत्रता का सामाजिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय लाभ प्राप्त करे।

(आ) अधिकारों और स्वतंत्रता का भोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति पर वे सीमाएँ होंगी जो कानून से दूसरों के अधिकार, मान और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए निश्चय की जाएँगी और जो प्रजातांत्रिक समाज में चारित्र, शान्ति तथा सामान्य भलाई के लिए आवश्यक समझी जाएँगी।

(इ) ये अधिकार तथा स्वतंत्रताएँ किसी ऐसी अवस्था में प्रयोग नहीं की जाएँगी जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरुद्ध जाएँ।

29. इस घोषणा में कही बातों का कोई ऐसा अर्थ नहीं निकाल सकेगा, जिससे कोई किसी राष्ट्र अथवा व्यक्ति से ऐसी हरकतें करा सके जिनसे ऊपर कहे अधिकारों अथवा स्वतंत्रताओं का नाश हो।

: 7 :

हमने मैग्नाकार्टा, 1791 का फ्रैंच संविधान और अन्त में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकारों का घोषणा-पत्र पूर्व की कण्डिकाओं में दिए हैं। हमें इनमें जो सांझी बात दिखाई देती है वह यह है कि किसी आततायी से आतंकित लोगों द्वारा बलपूर्वक अधिकारियों को विवश कर ये विधि-विधान बनाए गए थे अथवा ये घोषणाएँ कराई गई हैं।

मैग्नाकार्टा में मुख्य दबाव 'बैरन्स' (रईसों और ज़मींदारों) का था। व्यापारी भी इसमें कर की वृद्धि का विरोध करने के लिए सम्मिलित हुए थे और इन्होंने अपने लाभ की बातें इस 'चार्टर' में लिखवा ली थीं।

जो कुछ निर्धन किसानों और सामान्य जनता के लिए किया गया अथवा न्यायाधीश के अधिकारों में सुविधा और वृद्धि हुई वह राजा की ओर से उपस्थित की गई थी। इससे एक ओर तो वह राजा स्वयं प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरे, वह 'बैरन्स' (रईसो और ज़मींदारों) के अधिकारों को सीमित करना चाहता था। किसानों और साधारण जनता पर प्रायः ज़मींदारों और रईसों का अत्याचार ही चलता था। जब रईसों ने राजा के अधिकारों को सीमित कराया तो राजा के पक्षपातियों ने 'बैरन्स' के प्रभाव को भी कम करने का प्रयास कर दिया।

फ्रांस की क्रान्ति में तो साधारण जनता के प्रतिनिधि जो आम जनता में से ही थे, अमेरिका की स्वतंत्रता से प्रभावित हो माँग कर रहे थे। इन्हीं प्रतिनिधियों के हाथ में जब शक्ति आई तो हत्याएँ तथा लूट-मार हुईं।

संयुक्त राष्ट्र संघ भी एक दैत्य हिटलर के अत्याचारों की प्रतिक्रिया ही था। इस कारण हमारा यह कहना है कि इस समय जितने भी प्रजातंत्रात्मक संविधान लिखे अथवा अमल में लाए गए, ये सामयिक और स्थानीय परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में ही थे। इनमें वास्तविक मानव-कल्याण का उद्देश्य न्यूनतम था।

इस पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर और मानव स्वतंत्रताओं की घोषणा एक बहुत सीमा तक उचित ही प्रतीत होती है, परन्तु इन स्वतंत्रताओं की घोषणा करने वालों में भी एक सदस्य ऐसा था जो इस प्रयास को विफल करने की नीयत रखता था। ऐसी स्थिति में जो कुछ इन चार्टरों तथा संविधानों में कहा गया है वह सत्य, न्याय और श्रेष्ठता की वृद्धि के लिए इतना नहीं वरन् जितना उस समय पड़ने वाले दबाव की प्रतिक्रिया में है।

इंग्लैण्ड की वर्तमान पार्लियामेंट मैग्नाकार्टा की ही संतान है। यह ठीक है कि पिता-पितामहों की संतान की भाँति इसमें भी अनेक बातों में चार्टर से भिन्नता आई है परन्तु जैसी जातीय अथवा वंशज विशेषताएँ होती हैं वैसी ही यहाँ भी हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट किसी प्रकार की विचारित योजना से न तो बनी है न ही चल रही है। नाम डेमोक्रेसी (प्रजातंत्र) का है परन्तु बात उनकी चलती है जो धुआँधार व्याख्यान दे सकते हैं अथवा जनता की कामनाओं को उभारकर उनकी पूर्ति का आश्वासन दे सकते हैं।

यही कारण है कि हर तीन-चार वर्ष उपरान्त सरकार बदल जाती है। जहाँ कहीं, अन्य देशों में इसकी नकल में बनी पार्लियामेंट हैं, वे जनता के अधिकारों को ही नगण्य कर व्यक्ति को पालतू जानवर बनाने की घोषणा कर चुकी हैं।

हमारा यह विचारित मत है कि इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट सरकार की नकल में जहाँ-जहाँ भी सरकारें बनी हैं, वे निश्चित कारणों से कम्युनिस्ट तानाशाही की ओर अग्रसर हो रही हैं।

जब-जब भी कोई विद्वान् व्यक्ति अथवा विद्वानों की संस्था किसी प्रकार का सुधार करना चाहती है तब-तब ही अनपढ़ एवं अल्प-शिक्षितों के हो-हल्ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पूर्ण जाति को विकृत मार्ग पर डाल दिया जाता है।

सामान्य लोग इतने सीमित विचारशक्ति वाले होते हैं कि जब भी कोई इनकी वर्तमान मनोकामनाओं को पूर्ण नहीं कर सकता तो वह धर्म और न्याय की चिन्ता न कर ऐसी बातें करने लगता है कि वह लोगों को क्षण-भर में स्वर्ग दिला देगा। इसी कारण वर्तमान प्रजातंत्रात्मक प्रणाली में कोई स्थिर प्रगति की सम्भावना नहीं।

प्रायः लोग अपना वास्तविक हित नहीं जानते और इस पार्लियामेंटरी ढंग के विधि-विधान में जो जनता को तुरन्त और बिना कठोर तपस्या के बैकुण्ठ दिलवाने की आशा दे, वह बाजी ले जाता है। सामान्य जनता में बुद्धि का समावेश सामान्य होता है, इस कारण इस ढंग के प्रपंच में उनकी बन आती है जो चिकनी-चुपड़ी बातें कर सकते हैं और जो जनसाधारण को तत्कालीन अभावों को चुटकी में पूरा कर देने का विश्वास दिलवा सकते हैं।

पीड़ित, चाहे किसी आततायी से पीड़ित हों और चाहे वे अपनी कामनाओं से पीड़ित हों, उस पीड़ा से छूटने के लिए उत्सुक होते हैं और पार्लियामेंट ढंग के राज्यों में जो सरल चित्त जनता को चमका दे सकता है, वह शासक बन जाता है, भले ही वह शासक बनने पर झूठा सिद्ध हो। अधिक-से-अधिक यह होता है कि एक चकमा देने वाले को दूसरा, उससे अधिक लच्छेदार बातें करने वाला हरा सकता है।

और यह पार्लियामेंटरी ढंग की सरकार प्रायः सब देशों में पीड़ितों द्वारा आततायियों की प्रतिक्रिया मात्र है। पीड़ित सदा ही इतने बुद्धिमान् होंगे कि जो सुविधाएँ वे प्राप्त करेंगे वे वास्तविक सुविधाएँ होंगी, कोई निश्चय से नहीं कह सकता। अधिक सम्भव यह होता है कि पीड़ित वे होते हैं जो जीवन-संघर्ष में सुख-सुविधा का मार्ग न पा किसी न किसी प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने का मार्ग ढूँढते फिरते हैं और वाक् कला को जानने वाले उनको काल्पनिक स्वर्ग दिखाकर अपने पीछे लगा लेते हैं।

प्रश्न यह है कि होना क्या चाहिए? यह बताने के लिए ही यह लेख लिखा जा रहा है। क्या होना चाहिए और यह कैसे हो सकेगा, इसका ही वर्णन हम इस पुस्तक में करना चाहते हैं।

हमने पृथु के उदाहरण में लिखा है कि उस समय जो पीड़ित थे, वे संविधान बनाने वाले नहीं थे। पीड़ितों का राज्य परिवर्तन करने में प्रयोग अवश्य किया गया था परन्तु वेन के मर जाने पर जब नये राजा की स्थापना होने लगी तो ऋषि और विद्वान् लोग, जो कदाचित् वेन के राज्य के निवासी भी नहीं थे और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही वे अपने लिए कुछ पाने की आकांक्षा रखते थे, नये शासन से अपने लिए कुछ लाभ प्राप्त करते हुए भी प्रतीत नहीं हुए, वे पृथु से शर्तें मनवाने आगे आ गए। कोई इस प्रकार की बात भी नहीं दिखाई देती, जैसी भारत में 1979 के मध्य में भारत की संसद में झूठ, फरेब और प्रत्येक प्रकार के प्रलोभन देकर स्वयं कोई पद प्राप्त कर लेने के लिए भाग-दौड़ करती देखी गई थी।

जो कुछ ऋषियों ने पृथु से वचन देने के लिए कहा वह धर्म, न्याय, निष्पक्ष व्यवहार और विद्वानों की रक्षा के लिए ही था।

उस काल में मानव-आवश्यकताएँ कम थीं परन्तु आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों में वही सिद्धान्त थे जो संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में माने गए हैं और वे सब पृथु से लिये वचनों में मूल रूप में आ गए हैं। जो उसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में कहा गया है, वह कुछ महत्त्व का है भी नहीं, यद्यपि अहितकर भी नहीं है।

मानव स्वतंत्रता का मूल यही है कि सबके साथ समान और धर्मयुक्त व्यवहार किया जाए। पृथु के वचनों में विशेषता यह है कि जो कोई धर्मयुक्त व्यवहार न रखे, उसको राज्य अपने बल से विनष्ट कर दे।

जो बात राष्ट्र संघ की घोषणा तथा धाराओं में नहीं है, वह यह है कि धर्म का स्वरूप निश्चित नहीं किया गया। पृथु के वचनों में यह कहा गया है कि वह सनातन धर्मों की सदा रक्षा करेगा और इनका नाश नहीं होने देगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में इन सनातन धर्मों का उल्लेख कर यह कहना चाहिए था कि इन धर्मों का उल्लंघन करने वाला संघ का सदस्य नहीं हो सकेगा।

सनातन धर्म भारतीय स्मृतियों में दस गिनाए हैं। वे सबसे सर्वत्र पालन करने योग्य माने जाते हैं और उनका ही उल्लेख राष्ट्र संघ के चार्टर में नहीं है। वे दस सनातन धर्म जो सदा पालन करने योग्य हैं इस प्रकार हैं—(1) धृति अर्थात् उतावली न करना; दूसरे की त्रुटियों को देखकर भी उसको सुधारने का यत्न करना; (2) क्षमा अर्थात् क्षमा-याचना करने वाले और पश्चात्ताप करने वाले के अपराध को भूल जाना; (3) दम—अपनी कामनाओं को नियंत्रण में रखना; (4) अस्तेय—चोरी न करना, अर्थात् अपने और पराए में भेद समझ अपने पर ही अधिकार रखना; (5) शौच—मन-वचन-कर्म में निर्मलता; (6) इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् भोग पर नियंत्रण। भोग की इच्छा कामनाओं से उत्पन्न होती है। इसको सीमा से न बढ़ने देना; (7) बुद्धि का विकास; (8) विद्या--ज्ञान का अर्जन; (9) सत्य—मन, वचन और कर्म से समान होना। (10) अक्रोध—क्रोध नहीं करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोध से अभिप्राय अकारण किसी से नाराज़ होना है। दुष्टों को दण्ड देना क्रोध करना नहीं कहाता। इसे मन्यु कहते हैं। क्रोध तो अकारण विरोध करने का नाम है। इससे बचना अक्रोध है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा में इन धर्मों का उल्लेख होना चाहिए था और संघ में सम्मिलित होने वाले राज्यों के लिए इनका पालन अनिवार्य माना जाना चाहिए था।

अधिक से अधिक यह चार्टर कोरी कामना मात्र है। इनका पालन करने पर विवशता नहीं। पृथु से शपथ लेते समय यह माँग की गई थी कि वह उन सनातन धर्मों का पालन करेगा और अपने राज्य में करायेगा।

प्रजातंत्र पद्धति में यह अनिवार्य है कि सबको साथ लेकर चले। सबमें अच्छे, बुरे, ईमानदार, बेईमान सब प्रकार के लोग रहते हैं और वे सब एक साथ चल नहीं सकते। परिणाम यह होता है कि सब महत्त्वाकांक्षाएँ धरी की धरी रह जाती हैं। साथ-साथ चलने वाले परस्पर लड़ पड़ते हैं।

अब संयुक्त राष्ट्र संघ की बात ही देखें। द्वितीय विश्व-युद्ध में अमेरिका और रूस सर्वथा भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं के राज्य एक ओर हो गए थे और जर्मनी का विरोध करने लगे थे। युद्ध का काल विशेष था और उसमें इस प्रकार के विलक्षण स्वभाव वाले एक ही पक्ष में एक-दूसरे को सहन करते रहे थे, परन्तु यह बेमेल का समागम शान्तिकाल की संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं चल सकता था। और हमारा यह मत है कि यह एक दिन टूटेगा। जब टूटेगा तो एक भयंकर विस्फोट के साथ टूटेगा।

होना यह चाहिए कि वे कार्य जो सुरक्षा के विचार से किए जाएँ, उनमें तो सबका सहयोग लिया जाए। विभिन्न विचारधाराओं वाले होने पर भी कुछ लोग समान कठिनाई में फँस सकते हैं। सांझी कठिनाई में उस कठिनाई को दूर करने के लिए वे साथ-साथ भी चल सकते हैं परन्तु निर्माण-कार्य में तो समान आचार-विचार के लोग ही सहचारिता का व्यवहार रख सकते हैं।

यही भूल हुई थी जब 'अमृत-मंथन' हुआ था। यह निर्माणात्मक कार्य था और देवता तथा दैत्यों ने मिलकर किया था। जो युद्ध इसके उपरान्त हुआ वह अति भयंकर था और उस युद्ध के परिणाम में ही लंका में राक्षसों की उत्पत्ति हुई थी।

अब संयुक्त राष्ट्र संघ में भी एक निर्माण-कार्य हो रहा है और इसके उपरान्त भी एक भयंकर युद्ध होगा। हमारा अभिप्राय है कि धर्म के आधार पर जीवन-मीमांसा रखने वालों को निर्माण-कार्यों में दैत्यों के साथ सहयोग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए। यह प्रजातंत्र पद्धति के अनुसार है भी नहीं। उसमें 'गुड़, खल एक भाव' वाली बात है।

हमारे कथन का प्रमाण यह है कि प्रजातंत्रवादी देश भारत रूस का मित्र है; रूस सैनिक तानाशाही में विश्वास रखता है; अमेरिका अपने को प्रजातंत्रवादी कहता है और जब से भारत में प्रजातंत्रात्मक पद्धति का राज्य बना है अमेरिका भारत के विरुद्ध व्यवहार करता रहा है तथा पाकिस्तान की सहायता करता है जहाँ पिछले तीस वर्ष में बीस वर्ष से ऊपर काल से सैनिक तानाशाही चलती आ रही है।

ये प्रजातंत्र की विसंगतियाँ हैं। हमारे विचार में यह इस कारण है कि प्रजातंत्र एक अशुद्ध पद्धति है। इसमें विद्वानों को धकेलकर दीवार के साथ कर दिया जाता है और अनपढ़, स्वार्थी तथा कामनाओं से प्रेरित लोग प्रथम पंक्ति में आ खड़े होते हैं।

हैलिंसकी में संयुक्त राष्ट्र संघ में सम्मिलित राज्यों का एक सम्मेलन हुआ था। उसमें नागरिकों को विचार करने, बोलने तथा विचारों का प्रचार करने की स्वतंत्रता देना स्वीकार किया गया था। इस पर भी रूस में उस नागरिक को बंदी बना लिया जाता है जिसने रूस की सरकार का अफगानिस्तान पर अधिकार कर लेने को बुरा कहा था। इस समय भी रूस राष्ट्र संघ का न केवल सदस्य ही है वरन् राष्ट्र संघ के बहुत बड़ी संख्या में सदस्य उसके व्यवहार को पसन्द करते हैं।

इसी प्रकार हम कहते हैं कि ये सब संस्थाएँ और संविधान कृत्रिम परिस्थितियों में निर्माण हुए हैं। इनके बनाने वालों में बुद्धि ही नहीं थी कि न्याय-संगत व्यवस्था के अर्थ को समझें। ये लोग प्रायः दूसरों को छलने की नीयत से बगुलाभगत बने हुए हैं। इसी कारण न तो विधि-विधान ठीक बने हैं और न ही जो कुछ बना है उनका पालन ढंग से हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

: 1 :

राष्ट्र

अंग्रेज़ी के 'नेशन' शब्द का अर्थ हम राष्ट्र करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ है नेशन्स की अर्थात् राष्ट्रों की संस्था। इस कारण हम समझते हैं कि पहले राष्ट्र के विषय में ही अपने विचार लिखें।

राष्ट्र राज्य नहीं है। आज प्राय: देशों में, विशेष रूप में जहाँ संसदीय राज्य प्रणाली है वहाँ राज्य और राष्ट्र को एक में ही गलत-मलत किया जा रहा है। अनजाने अथवा किसी नीयत से इनमें भेद नहीं बताया जाता; न ही व्यवहार में लाया जाता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि जिन-जिन देशों में संसदीय राज्य प्रणाली है, वहाँ-वहाँ राष्ट्र राज्य में ही विलीन होकर निःशेष हो रहा है और राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में राष्ट्र का मुख मोड़ा जा रहा है।

भारत का ही उदाहरण लें। प्रथम संविधान, जो 1949 में स्वीकार हुआ था, उसमें सोशलिज्म शब्द नहीं था। इस पर भी राज्य पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अंगूठे के तले चलता था। इस कारण पण्डित नेहरू अपनी रुचि से देश में समाजवाद घुसेड़ते चले जाते थे। इस प्रकार वे सब कार्य, जो वह सोशलिज़्म के नाम पर करते थे, अवैधानिक ही कहे जा सकते हैं।

यद्यपि संविधान में कुछ धाराएँ ऐसी दर्ज कराई गई थीं, जो सोशलिज़्म की ओर मुख किए हुए थीं, परन्तु पूर्ण संविधान पर सोशलिज़्म लागू हो जाएगा, इसके लिए संविधान में कोई धारा नहीं थी। जैसे समाजवाद का कुछ संकेत उसमें था, वैसे ही समाजवाद के विरुद्ध भी कई संकेत थे।

उदाहरण के रूप में जैसे अछूत अथवा पिछड़ी जातियों के लिए कुछ सुविधाओं का उल्लेख उसमें था, वैसे ही सम्पत्ति रखने का अबाध अधिकार भी स्वीकृत था। परन्तु नेहरू जी के पीछे आने वालों ने तो भारत के संविधान को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णतः समाजवाद की ओर गतिशील कर दिया है। अब संविधान में सम्पत्ति रखने के अधिकार को निकाल दिया गया है और अछूतों के विशेषाधिकारों को स्थायी रूप देने का प्रयास आरम्भ हो गया है।

हम समझते हैं कि यह राज्य और राष्ट्र को एक ही किया जा रहा है अर्थात् राष्ट्र को राज्य में विलीन किया जा रहा है।

एक देश की समाज को ही राष्ट्र कहते हैं। राज्य राष्ट्र के अधीन होना चाहिए। परन्तु वर्तमान विधि-विधान से तो राज्य मुख्य हो गया है और राष्ट्र उसके अधीन हो गया है।

अछूतोद्धार तथा पिछड़े वर्गों का उद्धार राज्य का विषय नहीं है। राज्य तो दण्ड का सूचक होता है। इस कारण जब राज्य कोई कार्य करता है तो वह बल का प्रदर्शन करता है। राष्ट्र ऐसा नहीं कर सकता। राष्ट्र प्रेरणा का स्रोत है।

राष्ट्र पूर्ण समाज को कहते हैं। इसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत है, जबकि राज्य देश के प्रबन्ध और रक्षा करने वाला एक यंत्र है।

: 2 :

समाज, समाजवाद और संविधान

वर्तमान युग में समाजवाद के अर्थ जो समझे जाते हैं वे, समाज सेवा, जो एक अति पवित्र कार्य है, से भिन्न हैं। समाजवाद का अर्थ तो यह है कि पूर्ण समाज और देश के कार्य राज्याधीन हो जाएँ। उनका संचालन राज्य करे।

कम्युनिस्ट और समाजवादी देशों में यह अन्तर है कि जहाँ कम्युनिस्ट देशों में समाज के रूप को स्थिर कर दिया गया है, वहाँ समाजवादी देशों में इसके रूप को बदलने का अधिकार संसद को दिया जाता है। इस पर भी दोनों वादों में राज्य प्रधान है।

जब हंगरी ने रूस के विरुद्ध बगावत की थी तो रूस ने उस पर आक्रमण कर उसको पुनः अपने अधीन कर लिया था। पीछे चेकोस्लोवाकिया के विद्रोह के समय रूस के प्रधानमंत्री ब्रेझनेव ने यह सिद्धान्त घोषित किया था कि जो देश एक बार कम्युनिस्ट व्यवस्था में आ चुका है, उसको अधिकार नहीं कि वह रूस तथा कम्युनिज़्म के विपरीत कोई व्यवहार करे।

रूस में तथा अन्य कम्युनिस्ट देशों में जो सोवियत सम्मेलन हुआ करते हैं, वे समाज के स्वरूप को, जिसे लैनिन ने बनाया था, बदल नहीं सकते। समाजवादी देशों में संसद को एक विशेष बहुमत से प्रत्येक बात को बदलने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार होता है। इस पर भी समाजवादी देशों में भी अनधिकारी, हमारा अभिप्राय है कि मंत्रि-मण्डल, जो राज्य-कार्य चलाने के लिए नियुक्त होता है, समाज के कार्यों पर नियंत्रण करता रहता है।

उदाहरण के रूप में कोई व्यक्ति व्यवसाय करे अथवा सेवा-कार्य करे, इस विषय में भी राज्य हस्तक्षेप करता है। अपने परिश्रम से कोई कितना अर्जन करे यह भी राज्य के हस्तक्षेप का विषय हो गया है। धीरे-धीरे उद्योग-धन्धों को सरकार अपने अधीन करती जाती है। यह हस्तक्षेप उद्योग-धन्धों में अधर्म-युक्त चलन को रोकने का यत्न नहीं है, वरन् उन पर अधिकार जमाने का यत्न है। इस कारण कि उनसे होने वाले लाभ का राज्य प्रयोग कर सके। उदाहरण के रूप में बैंकों तथा बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण है।

समाजवाद में राज्य धीरे-धीरे एक व्यवसायी तथा दुकानदार बनता चला जाता है। हमारे विचार में राज्य का यह राष्ट्र पर अतिक्रमण है।

यह ठीक है कि समाजवाद की बातें संविधान में से बदली जा सकती हैं परन्तु हम समझते हैं कि संविधान के प्राक्कथन में भारत को समाजवाद लिख देने से वही बात हो गई है जो कम्युनिस्ट देशों में है। वहाँ भी समाजवाद राष्ट्र का एक अपरिवर्तनशील रूप माना गया है। जैसे कम्युनिस्ट देशों से समाजवाद बिना रक्तरंजित क्रान्ति के नहीं निकाला जा सकता, वैसे ही भारत संविधान के प्राक्कथन में समाजवाद का समावेश करने का यही अभिप्राय हो गया है कि इसका विरोध संविधान का विरोध हो गया है, जिसे शान्तिपूर्वक बदला नहीं जा सकेगा।

परन्तु प्रश्न यह है कि इसे बदलने की आवश्यकता है क्या?

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था समय-समय पर आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील व्यवस्था है। इस कारण इसको संविधान की उन बातों के साथ लिख देना जो संविधान की आधारभूत (Basic Principles) बातें हैं, अनर्थकारी सिद्ध हुआ है।

जैसे सबके लिए समान अधिकार एक ऐसी बात है जिसको हम अपने संविधान का अपरिवर्तनशील अंग मानते हैं, वैसे ही देश की अर्थव्यवस्था हो गई है। कभी इसको बदलना पड़ा तो चेकोस्लोवाकिया अथवा हंगरी की भाँति यहाँ भी रक्त की नदियाँ बह जाएँगी।

अतः समाजवादी व्यवस्था जैसी आज समझी जाती है, के हम विरुद्ध हैं। अर्थव्यवस्था राज्यान्तर्गत नहीं होनी चाहिए। यह व्यक्तिगत प्रश्न है। इस पर भी हम मानते हैं कि अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण एक ओर समाज का तथा दूसरी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य का रहे। परन्तु नियंत्रण का अर्थ स्वामित्व नहीं। स्वामित्व तो व्यक्ति का ही रहना चाहिए।

यह नियंत्रण किस प्रकार बिना स्वामित्व के हो सकता है, यह हम आगे चलकर बताएँगे।

संविधान के प्राक्कथन में समाजवाद को रखना उचित नहीं। प्राक्कथन में तो राष्ट्र अर्थात् किसी देश के समाज का उद्देश्य जिससे समाज एक बना रह सके, ही बताना चाहिए। इस कारण हम समझते हैं कि राष्ट्र का उद्देश्य संविधान के प्राक्कथन में लिखा जाना चाहिए।

यह हम जानते हैं कि भारत एक अति प्राचीन देश है। इसका इतिहास भी अति प्राचीन काल से हमें ज्ञात है।

अंग्रेज़ और अन्य यूरोपीय जातियों का यह कहना कि भारतवर्ष का इतिहास नहीं मिलता, सत्य नहीं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि भारत के प्राचीन इतिहासकार तथा विद्वान् इतिहास का वह अर्थ नहीं लेते थे जो आजकल के युग में लिया जा रहा है।

यद्यपि कुछ इतिहासकार आज यह कहने लगे हैं कि किसी जाति के सांस्कृतिक, औद्योगिक, सामाजिक व्यवहार का लेखा-जोखा भी इतिहास का विषय है, इस पर भी आज के लोग इन बातों को इतिहास में गौण मानते हैं और राजाओं, राज्यों तथा युद्धों के वर्णन को मुख्य मानते हैं।

भारतीय इतिहासकार राजाओं के वर्णन को गौण मानते थे। साथ ही वे उन घटनाओं के, जो चाहे राज्यों और राजाओं में हुई हों और चाहे सामान्य जनता में, कारण तथा परिणामों का भी ध्यान रखते थे। इस पूर्वापर के वृत्तान्त को जानने में वे कभी-कभी पूर्व जन्म और भावी जन्म तक भी पहुँचने का यत्न करते देखे जाते हैं।

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। महाभारत युद्ध में अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला दुर्धर्ष योद्धा और विजेता भीष्म एक शिखंडी नाम के नपुंसक से मारा गया था। इतिहासकार व्यास मुनि इसमें कारण वर्णन करते हुए शिखण्डी के पूर्व जन्म तक जाता है। वह बताता है कि शिखण्डी पूर्व जन्म में काशिराज की कन्या थी। भीष्म ने अपने भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए काशिराज की स्वयंवर करती हुई तीन लड़कियों का अपहरण किया। तीनों में बड़ी बहन अम्बा ने विचित्रवीर्य से विवाह करने से इनकार किया और अपने अपहरण किए जाने पर भीष्म के गुरु परशुराम के पास शिकायत की। परशुराम का भीष्म को आदेश हुआ कि जब उसने लड़की का अपहरण किया है तो वह उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं विवाह कर ले। भीष्म का कहना था कि वह अविवाहित रहने का व्रत ले चुका है, इस कारण वह स्वयं विवाह नहीं कर सकता। इस पर गुरु क्रुद्ध हो गए और फिर गुरु-शिष्य में युद्ध होने लगा। यह युद्ध कई दिन तक चलता रहा। इसे देख नारद ने दोनों को शान्त किया और युद्ध समाप्त कर दिया।

परन्तु अम्बा ने व्रत ले लिया कि भीष्म ने उसका जीवन नष्ट किया है, इस कारण वह भीष्म को स्वयं मारेगी। एक स्त्री भला कैसे भीष्म जैसे योद्धा की हत्या कर सकती थी? अतः वह भविष्य के जीवन के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगी। यह रहस्य व्यास मुनि बताते हैं कि अम्बा ही नए जन्म में शिखण्डी हुई थी और ऐसी परिस्थिति बनी कि उसने युद्ध में भीष्म को धराशायी कर दिया।

प्राचीन भारतीय इतिहासकार इस प्रकार घटनाओं का कारण एवं परिणाम भी इतिहास का विषय मानते थे। यह ठीक है अथवा गलत, इस पर मतभेद हो सकता है। परन्तु यह कहना कि भारतवर्ष का इतिहास नहीं मिलता, अशुद्ध है।

पाश्चात्य इतिहासकार एक बात भूल जाते हैं कि मुसलमानी राज्य इस देश में तब आया जब ब्राह्मणों ने पठन-पाठन ब्राह्मणों तक ही सीमित कर रखा था और ब्राह्मण का पुत्र ही ब्राह्मण हो सकता था। ब्राह्मण की पालना तो यजमान ही कर सकते थे। बौद्ध मत का राज्य हो जाने से यजमान विशेष रहे नहीं थे। ऐसे काल में ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ पुस्तकालयों में ही रह गए थे। लोगों के घरों में तो पुराण इत्यादि साहित्य ही रह गया था।

ऐसी अवस्था में अफगान, मुगल, तुर्क जैसे नृशंस और अपने पूर्वग्रहों से ग्रसित जाति ने आक्रमण कर देश पर शासन जमा लिया। तब इन्होंने कैसे पुस्तकों को अग्नि की भेंट किया, यह इस्लाम के सब देशों के इतिहास से पता चलता है।

परिणाम यह हुआ कि भारत देश में पुस्तकालय फूँक दिए गए और जो कुछ साहित्य अब मिलता है, वह लोगों के घरों में सामान्य पढ़ने के ग्रन्थ ही हैं। उनसे ही हम इतिहास का संकलन कर सकते हैं।

जब मुसलमानों का राज्य समाप्त किया गया तब दुर्भाग्य से अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो गया और वे यहाँ आते ही यहाँ के मूल निवासियों को ज़ाहिल सिद्ध करने में लग गए।

यह तो बीच में प्रसंग आ गया है। हम बता रहे थे कि भारत देश एक प्राचीन देश है। बहुत प्राचीन काल से इतिहास और श्रेष्ठ संस्कृति का यह स्वामी रहा है। अतः वर्तमान को उससे काटकर पृथक् करना न तो सम्भव है न ही हितकर। इस कारण हम भारत के राष्ट्र का सूत्र भूतकाल से जोड़ रखना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह केवल मनोद्गार ही नहीं, वरन् इस कारण भी है कि हम इस देश के भूतकाल को आज के काल से श्रेष्ठ और अति सुखकर समझते हैं।

इसी कारण वेद में कहे राष्ट्र के लक्षणों को हम वर्तमान राष्ट्र का अंग बनाना चाहते हैं। हमारा मत है कि वे लक्षण वर्तमान काल में भी देश को एक श्रेष्ठ मार्गदर्शन देने की सामर्थ्य रखते हैं।

: 3 :

राष्ट्र

संविधान राष्ट्र और राज्य में एक अनुबन्ध है, इस कारण राष्ट्र की परम्परा को प्रथम और सर्वोपरि मान्यता का स्थान मिलना ही चाहिए।

हमारा यह मत है कि भारत देश के संविधान का आरम्भ एक सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् तत्त्व परमात्मा का नाम लेकर होना चाहिए।

यह केवल एक भावना मात्र नहीं, वरन् एक वस्तुस्थिति है और इसको विस्मरण करने से शासकों को निष्पक्ष रहने की प्रेरणा नहीं मिलती। परमात्मा को संविधान जैसे प्रलेख में से बाहर रखने के भारी दुष्परिणाम हो रहे हैं।[1]

परमात्मा हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अथवा संसार में किसी भी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति नहीं हो सकता। यह एक व्यापक शक्ति का नाम है जिसका राजा से रंक तक को मान करना चाहिए।

परमात्मा के नियम हैं जिनको वैदिक भाषा में ऋत और अंग्रेजी में Natural Laws कहते हैं। परमात्मा को समक्ष रखने से उन ऋतों के पालन की प्रेरणा मिलती है।

अतः भारत का संविधान कुछ इस प्रकार आरम्भ होना चाहिए था—

हम देश के रहने वाले, परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर, उसके नियमों का पालन करते हुए यह विधान कर रहे हैं कि परिवार, जन्म-जाति, जन्म-स्थान, लिंग इत्यादि का विचार छोड़कर सबके लिए समान व्यवस्था करने के लिए यह प्रलेख वचन रूप में लिख रहे हैं। हम सब समान, परस्पर मान-मर्यादा की रक्षा करते हुए भारत देश में रहने का प्रण करते हैं। इस समानता, मान-मर्यादा से रहने और परस्पर व्यवहार के लिए हम यह घोषणा करते हैं कि

---

1. इस विषय पर विस्तृत विवेचन श्री गुरुदत्त की रचना 'वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिन्दू राष्ट्र' में पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम अपने विद्वानों का आदर करेंगे और सबका गुण, कर्म एवं स्वभावानुसार अधिकार मानेंगे। हम इस देश के राष्ट्र को समृद्ध, शक्ति सम्पन्न और ज्ञान का भण्डार बनाने में कटिबद्ध रहेंगे। हम इस देश के रहने वालों के स्वत्व, धन-सम्पदा, मान-मर्यादा और मानव समाज में श्रेष्ठ स्थान पाने तथा आततायियों से इसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध रहेंगे।

वर्तमान संविधान में शब्द हैं equality, fraternity and liberty; इनका अर्थ है समानता, भ्रातृभाव और स्वतंत्रता। हम समझते हैं कि इनके स्थान पर शब्द, 'स्वत्व, धन, सम्पदा, ज्ञान और मानव समाज' में श्रेष्ठ स्थान पाना एवं आततायियों से रक्षा अधिक व्यापक और सशक्त हैं।

वर्तमान भूमण्डल में मान-युक्त स्थान पाने के लिए परस्पर के व्यवहार तथा रक्षा का भी उत्तरदायित्व राष्ट्र का होता है।

इस रक्षा के संकल्प से ही तो हम राज्य जिसका निर्माण इस संविधान का मुख्य उद्देश्य है, का स्वरूप बना सकेंगे।

कुछ ऐसा कथन भारत राष्ट्र का संकल्प होना चाहिए। संविधान के प्राक्कथन में परमात्मा का नाम लेकर राष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने और इसकी रक्षा का प्रबन्ध करने का आयोजन मुख्य बात होनी चाहिए। हम समझते हैं कि वर्तमान संविधान में संविधान का अभिप्राय ही स्पष्ट नहीं है।

: 4 :

राष्ट्र के घटक

संकल्प के उपरान्त हम राष्ट्र के विशेष अंगों का वर्णन करना चाहते हैं। इन अंगों में सर्वप्रथम है राष्ट्र के घटक। इनको आजकल की भाषा में नागरिक कहते हैं। अंग्रेज़ी में इनके लिए शब्द है Citizen। ये दोनों शब्द उपयुक्त नहीं हैं।

हम एक समाज हैं। यह इस कारण नहीं कि हम भारत देश, जिसका विकृत चित्र सन् 1947 के उपरान्त बना है, में रहते हैं वरन् इस कारण कि हमने (प्राक्कथन में कहे अनुसार) इकट्ठे रहने का संकल्प किया है। इस संकल्प को पूर्ण करने के लिए हमें एक देश और साथ में एक राज्य की आवश्यकता है। इस कारण पहले राष्ट्र के घटकों का वर्णन होना चाहिए। तदनन्तर राष्ट्र के रहने के लिए स्थान का वर्णन हो।

हमारे सामने यहूदी कौम का उदाहरण है। ये लगभग डेढ़ सहस्र वर्षों तक बिना किसी देश के रहते रहे हैं, परन्तु ये एक राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर रखने में दृढ़ संकल्प रहे थे। अब सन् 1948 से वे अपना देश पा गए हैं।

अतएव हमारा कहना है कि राष्ट्र के घटक के लक्षण पहले होने चाहिएँ। राष्ट्र-निर्माण प्रथम कार्य है और सौभाग्य से हमारे भारतीय अथवा हिन्दू राष्ट्र के पास अपना देश भी है। कभी ऐसा समय आया था कि देश हिन्दू अर्थात् भारतीय राष्ट्र के पास नहीं रहा था। यह देश बहुत बड़े अंश में विदेशियों के अधीन चला गया था। हमारा अभिप्राय है तुर्क, मुगल, पठानों और फिर अंग्रेज़ों के अधीन। अब पुन: अवसर मिला है कि भारतीय राष्ट्र को अपना देश मिला है। यह इस कारण कि तुर्क, मुगल, पठानों के काल में भी भारत एक सम्पन्न राष्ट्र बना रहा है। राणा प्रताप, शिवाजी, महाराजा रणजीत सिंह और अन्य महान् योद्धा हिन्दू राष्ट्र के लिए संघर्ष करते रहे हैं।

इन योद्धाओं के अतिरिक्त तुलसी, कबीर, मीरा, रामदास, स्वामी दयानन्द आदि अनेक महात्माजन भी भारत राष्ट्र को बनाए रखने के लिए यत्न करते रहे हैं।

इस कारण हम समझते हैं कि राष्ट्र मुख्य है।

वर्तमान संविधान में इसका क्रम उलट दिया गया है। देश का वर्णन पहले है और उसमें बसे नागरिकों का वर्णन पीछे है। हम समझते हैं कि यह इस कारण है कि सन् 1947 में हमारे नेता वे बन गए थे जो राष्ट्र का अभिप्राय ही नहीं समझते थे। वे स्टेट (State), नेशन (Nation) और राज्य में भेद नहीं जानते थे। पंडित जवाहर लाल ने अपने स्वरचित जीवन चरित् में तो राष्ट्रवाद (Nationalism) की निन्दा ही की है।

इस कारण राष्ट्र के घटक कौन हैं इसका उल्लेख पहले होना चाहिए और राष्ट्र के लिए स्थान (देश) का विचार पीछे की बात है।

आज यह समझा जाता है कि अपने देश में अनेकानेक मज़हबों, अनेक जातियों, अनेक परम्पराओं वाले और अनेक राजनीतिक विचारों वाले लोग रहते हैं।

हम समझते हैं कि यह कथन राष्ट्र के घटकों में विभिन्नता का वर्णन मात्र है। यह विभिन्नता तो सदा और सर्वत्र रहती है और रहेगी। परन्तु इसके रहते हुए भी कुछ बातें सांझी हैं। उनका उल्लेख लोग नहीं करते।

कोई रामभक्त है अथवा कोई कृष्णभक्त है, कोई क्षत्रिय अथवा वैश्य है और कोई ब्राह्मण है, कोई शैव, वैष्णव, दुर्गा का उपासक है अथवा इस्लाममत को मानने वाला है, इन बातों की राष्ट्र चिन्ता नहीं करता, न ही इनके आधार पर अपने को स्थापित करता है। ये व्यक्तिगत आवश्यकताएँ और भावनाएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यह जानते हैं कि भूमण्डल में दो मत के लोग, ईसाई और मुसलमान, अपने को तो एक राष्ट्र मानते हैं और दूसरों को किसी भी स्थान पर राष्ट्र के रूप में देखना नहीं चाहते। ये दोनों समुदाय के लोग भारत में भी हैं। इनकी उपस्थिति में जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, शाक्त, आर्यसमाजी, सिक्ख इत्यादि की क्या स्थिति होगी? यह विचारणीय है। मुसलमान और ईसाइयों को यदि यहाँ भारत में रहना है तो इनको राष्ट्र के लक्षणों को स्वीकार करना पड़ेगा।

वर्तमान संविधान में भारत में रहने वाले यहाँ के नागरिक माने गए हैं तथा संविधान की शर्तों के अतिरिक्त संसद से स्वीकार किए नागरिकों के कानून 1955 की कुछ शर्तों के अनुसार नागरिक माने गए हैं।

संविधान में नागरिक के लिए यह कहा है—

(1) जो 15 अगस्त को भारत में रहते थे, जो पाकिस्तान को नहीं गए अथवा नहीं जा रहे, अथवा जो Government of India Act 1935 के अनुसार भारत के नागरिक हैं, अथवा जो 19 जुलाई, 1948 से पूर्व भारत देश में आकर बस गए हैं अथवा जिनके माता-पिता अथवा दादा-दादी कभी भारत में रहते थे, इत्यादि कुछ शर्तें हैं।

ये शर्तें अपर्याप्त हैं और हम समझते हैं कि भारत में रहने वाले मुसलमान अल्प संख्या में होते हुए भी अन्य लोगों को तंग करने लगे हैं। इसमें कारण यह है कि हमने मूर्खों की भाँति देश को मुख्य माना है और देश में रहने वाले राष्ट्र को गौण समझा है।

हमारा विचार है कि सर्वप्रथम राष्ट्र का संगठन होना चाहिए। उस राष्ट्र के पास कोई देश है अथवा नहीं, यह पीछे विचार करने की बात है। हम यह बता चुके हैं कि हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने वाले सात सौ वर्ष तक यहाँ राज्य करते रहे थे और यहाँ के राष्ट्र को आक्रान्ताओं को सहन करना पड़ा था। विशाल संख्या में होते हुए भी वे दूसरे दर्जे के नागरिक माने जाते रहे हैं।

उस समय अल्प संख्या में होते हुए भी मुसलमान यहाँ के राजा थे और यहाँ के प्रथम दर्जा के नागरिक थे। इस कारण हम पहले राष्ट्र के लक्षण की बात करेंगे।

अतः राष्ट्र के घटक वे हों—

(1) जो बिना मज़हब, जाति, जन्म-स्थान, लिंग, रंग इत्यादि के भेदभाव के भारत (अधिक अच्छा है हिन्दू) राष्ट्र का अंग बनकर रहना चाहते हैं।

भारत से हिन्दू शब्द अधिक उपयुक्त है, क्योंकि भारत केवल मात्र एक भूमिखंड का नाम है और हिन्दू नाम यद्यपि एक भूमिखंड के कारण हमें विदेशियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दिया था, परन्तु पीछे यह कुछ परम्पराओं का प्रतीक हो गया है। इसके साथ ही इस नाम पर यहाँ के मूल निवासियों ने आक्रान्ताओं का एक सहस्र वर्ष तक विरोध किया है। आज इस देश में हिन्दू ही एक ऐसा जनसमूह है जो ऊपर कही शर्तें मानता है। मुसलमान हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों को सदैव और सर्वत्र उपमा देता है। फिर उनमें लिंग भेद से अधिकार भी न्यूनाधिक हैं। उनको यहाँ की समाज की समृद्धि की तुलना में विदेशी इस्लामी समाजों की चिंता अधिक रहती है। हिन्दू समाज और हिन्दुस्तान नाम सम्बन्धित हैं। अतः हिन्दुस्तान नाम अधिक उपयुक्त है। इस पर भी भारत नाम का हम विरोध नहीं करते।

(2) जो स्वीकार करते हैं कि इस पूर्ण जगत् का निर्माता, संचालक और रक्षक एक महान् शक्तिस्वरूप परमात्मा है। उसके कुछ नियम हैं। जो उसकी सत्ता और उसके नियमों को मानता है, वह यहाँ के राष्ट्र का घटक है;

(3) जो समाज के सम्मानित विद्वानों का मान करता है;

(4) जो समाज के शूरवीर सेनानायक तथा समाज की आततायियों से रक्षा करने वालों को श्रेष्ठ मान उनका आदर करता है;

(6) जो समाज के धनधान्य की न केवल रक्षा करने के लिए वरन् इसमें वृद्धि करने के लिए यत्नशील रहता है;

(6) जो देश में दुग्ध (गोदुग्ध की वरीयता स्वीकार कर), इनके स्रोतों को पुष्ट और विस्तार करने में यत्नशील है;

(7) जो राष्ट्र के घटकों के योग-क्षेम के लिए यत्नशील रहता है;

(8) जो सामूहिक व्यवहार में समाज के सब घटकों को एक परिवार का अंग मानता है,

वह हिन्दू (भारत) राष्ट्र का घटक है।

: 5 :

देश

हिन्दू राष्ट्र के लिए एक देश की आवश्यकता है। जैसे एक परिवार के रहने के लिए मकान की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार एक राष्ट्र के लिए देश आवश्यक है।

जिस राष्ट्र का ऊपर उल्लेख किया है, उसका प्राचीन निवास-स्थान भारतवर्ष है। भारतवर्ष का ही नाम लगभग एक-डेढ़ सहस्र वर्ष से हिन्दुस्तान पड़ा है। प्राचीन काल में भारतवर्ष की सीमा हिमालय से समुद्र तक और सिन्धु नदी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मपुत्र नदी तक मानी गयी थी।

परन्तु जैसे परिवार पर अच्छे और बुरे दिन आते हैं वैसे ही राष्ट्र पर भी ऊँच-नीच के दिन आते रहते हैं। उन स्थितियों के अनुसार राष्ट्र का निवास-स्थान छोटा-बड़ा होता रहता है। यह हिन्दू राष्ट्र के साथ भी हो चुका है और हो रहा है। वर्तमान युग में भी भारतीय (हिन्दू) राष्ट्र का निवास-स्थान संकुचित हुआ है। इस समय भी देश का एक बहुत बड़ा भाग रावी नदी के उत्तर पश्चिम में और कुछ भाग ब्रह्मपुत्र के पूर्व में इस राष्ट्र के पास नहीं है।

अतः देश छोटा-बड़ा होता रहता है। राष्ट्र सबल होता है तो यह अपनी आवश्यकता के अनुसार देश को विस्तार दे देता है और जब दुर्बल होता है तो स्वाभाविक रूप में देश संकुचित हो जाता है। मुसलमानी काल में दक्षिण का कुछ भाग ही हिन्दू राष्ट्र के पास रह गया था। अब 1947 के उपरान्त राष्ट्र को पुनः अपना देश प्राप्त करने का अवसर मिला है। यद्यपि यह देश उतना बड़ा नहीं, जितना बड़ा पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में लिखा मिलता है, इस पर भी जो कुछ भी है उसकी सीमाएँ भारत के संविधान में गिनाई गई हैं।

भारत के वर्तमान संविधान में इन 22 राज्यों का संग्रह भारत राज्य है—

(1) आंध्र प्रदेश, (2) असम, (3) बिहार, (4) गुजरात, (5) हरियाणा, (6) कर्नाटक, (7) केरल, (8) मध्यप्रदेश, (9) तमिलनाडु, (10) महाराष्ट्र, (11) नागालैंड, (12) उड़ीसा, (13) पंजाब, (14) राजस्थान, (15) उत्तर प्रदेश, (16) पश्चिमी बंगाल, (17) जम्मू कश्मीर, (18) हिमाचल प्रदेश, (19) मणिपुर, (20) त्रिपुरा, (21) मेघालय, (22) सिक्किम।

इनमें से कुछ राज्य भारत भूमि का विभाजन होने के पीछे बने हैं।

इन 22 राज्यों के अतिरिक्त देश के कुछ भाग भारत की केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं। ये नौ भाग हैं—(1) दिल्ली, (2) अण्डेमान, (3) लंकाद्वीप, (4) दादर और नगर हवेली, (5) गोआ, (6) दमन और ड्यू, (7) पाण्डिचेरी, (8) मिज़ोरम, (9) अरुणाचल।

वर्तमान संविधान में संसद को अधिकार दिया गया है कि देश में ही नये राज्य अथवा केन्द्रीय शासित क्षेत्र बना सके अथवा नए राज्य स्थापित कर सके।

हम समझते हैं कि भारत देश की रूपरेखा बहुत-सी, देशीय और अन्तर्देशीय परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इस कारण संविधान में देश के विषय में संसद को अधिकार होना चाहिए कि वह देश के विस्तार तथा रूपरेखा के विषय में अदल-बदल कर सके।

संविधान में देश का मानचित्र प्रकाशित होते रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक राष्ट्र के लिए देश की आवश्यकता है, वहाँ तक निम्न बातें उस देश के लक्षण में निश्चित होनी चाहिएँ।

राष्ट्र का देश वहाँ तक माना जा सकता है जहाँ तक राष्ट्र के घटक स्वतंत्रता से आ-जा सकें, जीविकोपार्जन कर सकें, वहाँ सम्पत्ति बना बस सकें और अपने राष्ट्र के साथ सम्बन्ध भी रख सकें। साथ ही वे उस देश के किसी भी राज्य के नागरिक हो सकते हैं।

: 6 :

मूलाधिकार

भारत के वर्तमान संविधान में मूलाधिकारों का सम्बन्ध नागरिकों से है, जबकि इनका सम्बन्ध राष्ट्र के घटकों से होना चाहिए। यद्यपि राष्ट्र के घटक भी देश के किसी न किसी राज्य (प्रदेश) के नागरिक होंगे परन्तु क्योंकि नागरिकों का सम्बन्ध राज्यों से है और नागरिक भिन्न-भिन्न राज्यों के पृथक्-पृथक् हैं, इस कारण मूलाधिकारों का सम्बन्ध राष्ट्र से है, जिससे राज्यों के नियम-उपनियम उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सकें।

यूँ तो हमारे इस प्रारूप में भी और भारत के वर्तमान संविधान में भी मूलाधिकार पूर्ण भारत देश में केन्द्र का विषय हैं और न्यायालय विशेष रूप में सर्वोच्च न्यायालय की देख-रेख में इनका पालन होता है।

यही प्रकट करने के लिए हमने अपने प्रारूप में इनका सम्बन्ध राष्ट्र के घटकों से लिखा है। यह इस कारण कि मूलाधिकार तथा नागरिक अधिकारों में अन्तर होता है। नागरिक अधिकार राज्यों के अधीन होने चाहिएँ।

मूलाधिकार भारत के वर्तमान संविधान में बहुत व्याख्या से कहे हैं। परन्तु प्रत्येक मूलाधिकार में इतने अपवाद रखे गए हैं कि वे मूलाधिकार कभी भी नहीं समझे जा सकते। यद्यपि संविधान में उनका नाम मूलाधिकार कहा है, परन्तु वे मूलाधिकार ही क्या हुए जिनका केन्द्र अथवा राज्य विरोध कर सके।

उदाहरण के रूप में पहला ही मूलाधिकार धारा 14 में इस प्रकार कहा है—

देश के कानून के सम्मुख राज्य किसी को भी समानता देने से इनकार नहीं कर सकेगा। कानून का संरक्षण सबको समान रूप में प्राप्त होगा।

धारा 15—मज़हब, जाति, नस्ल, लिंग अथवा जन्म-स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी के आधार पर भी राज्य नागरिकों में भेदभाव नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि धारा 15 इतनी व्यापक है कि धारा 14 निरर्थक हो गई है और धारा 14 में ही कहा है कि कानून किसी भी नागरिक में भेदभाव नहीं करेगा। फिर यह कहा है सबको बराबर संरक्षण देगा। व्यर्थ में पुनरुक्ति हो गई है।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि इस प्रकार एक ही बात को दुहराने तथा दो धाराओं में भिन्न-भिन्न शब्दों में देने से संविधान की महिमा कम हुई है और इसकी विवेचना में विकृति आ सकती है।

परन्तु हम तो यह कह रहे हैं कि धारा 15 में जो अधिकार दिया गया है कि किसी भी नागरिक से मज़हब इत्यादि कारणों में भेदभाव नहीं किया जाएगा, तो उन नागरिकों में क्या अछूत और पिछड़ी जाति के लोग नहीं आते थे जो उनके लिए धारा 15-4 में यह लिख दिया है कि अछूतों और पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए कोई भी राज्य विशेष प्रबन्ध कर सकता है?

हमारा प्रश्न है कि क्या ऐसा करने का अर्थात् अछूत और पिछड़ी जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध करने का यह अभिप्राय: नहीं निकलता कि कही जाने वाली उच्च अथवा प्रगतिशील जातियों और उनमें भेदभाव किया गया है?

आज देश में इसी बात पर हा-हा कार मचा हुआ है। असम, बिहार और गुजरात में बीसियों इस भेदभाव के विषय में आन्दोलन करते हुए गोली से यमद्वार पहुँचाए जा चुके हैं।

हम समझते हैं कि धारा 15 में जो कुछ कहा गया है, वह धारा 14 में कही बात को अपने में समावेश करता है और फिर धारा 15 में जो कुछ कहा गया है, धारा 15-4 से उसे निःशेष कर दिया गया है।

आज अछूतों और पिछड़ी जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है तो कल देश में अल्पसंख्यक (Minorities) भी अपने लिए विशेष संरक्षण माँगेंगे। विशेष का अभिप्राय है जो देश के रहने वाले अन्य लोगों को प्राप्य नहीं है।

इससे, हम समझते हैं कि भारत के संविधान में जो बराबरी की सौगन्ध ली गई है, वह धारा 15-4 से निरर्थक कर दी गई है।

इसी प्रकार सब-के-सब मूलाधिकारों के साथ किया गया है।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब किसी समुदाय के लिए विशेष प्रबन्ध संविधान में किया जाता है तो संविधान को भेदभाव करने वाला ही माना जाएगा।

धारा 16-1 है सरकारी सेवाओं में भेदभाव न रखने के विषय में। वहाँ कहा है कि सरकारी सेवाओं में सब नागरिकों से समानता का व्यवहार किया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा 16-2 में धारा 16-1 को व्याख्या से समझाने का यत्न किया गया है। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि संविधान के निर्माता सब सरकारी अफसरों को इतना मूर्ख समझते थे कि धारा 16-1 में कही बातों को समझने में असमर्थ होंगे।

साथ ही धारा 16-3 में कह दिया है कि यह धारा किसी राज्य विधान सभा अथवा संसद को ऐसा कानून बनाने से रोक नहीं सकेगी जिससे वह किसी विशेष आवश्यकता अथवा सुविधा के लिए नियुक्ति तथा सेवा की घोषणा से पहले ही इसको भंग करने की घोषणा कर चुकी होगी।

हम समझते हैं यह राज्य सरकारों को प्रोत्साहन दिया गया है कि वे जहाँ चाहें और जिसके साथ चाहें सरकारी सेवाओं में भेदभाव रख सकें।

धारा 16-4, 5 भी सरकारी अधिकारियों को यह समानता भंग करने की स्वीकृति दे रही है।

धारा 17 छुआछूत को मिटाने के लिए है।

धारा 18 में सेना घटकों के अतिरिक्त अन्य नागरिकों को पद, मान इत्यादि देने अथवा लेने से वंचित किया गया है।

परन्तु संविधान में संशोधन किए बिना अनेकों को पद्म-विभूषण इत्यादि दिए जा चुके हैं।

इन विशेषाधिकारों के समर्थन में यह कहा जाता है कि पिछड़ी जातियाँ उन्नत जातियों के सैकड़ों वर्षों के अन्यायाचरण से पिछड़ी रह गई हैं।

यद्यपि हम केवल इस बात को ही उनके पिछड़ेपन में कारण नहीं समझते, इस पर भी हमारा कहना है कि मानसिक दुर्बलता अथवा बुद्धि की हीन दशा किसी दूसरे के व्यवहार से नहीं होती। यह पूर्वजन्म के कर्मफल का परिणाम होती है। इस पर भी हम इस पिछड़ेपन का इलाज यह संरक्षण नहीं समझते। यह पिछड़ापन किसी भी कारण से बना हो, इसकी चिकित्सा न तो आरक्षण है न ही विशेषाधिकार है। यह परीक्षण मुसलमानों से किया जा चुका है। अब भी अल्पसंख्यकों को विशेष सुविधाएँ देकर परीक्षण किया जा रहा है। परिणाम में न तो पिछड़े हुए आगे आ सके हैं, न ही अल्पसंख्यकों को किसी प्रकार की सुविधा पहुँच सकी है। ये आरक्षण और सुविधाएँ राष्ट्र में फूट और देश-विभाजन में कारण बनी हैं।

हमारा यह मत है कि संविधान बनाने वालों ने यह महान् भूल की है।

परन्तु संविधान के सब अपवाद अछूतों और अल्पसंख्यकों की सहायता के लिए ही नहीं हैं, सरकारी अधिकारियों की गलतियों को छुपाने के लिए भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात निर्विवाद है कि संविधान का अध्याय लिखते हुए, संविधान निर्माताओं के मन में अधिकार देने के स्थान अधिकार छीनना अधिक समाया हुआ था।

मूलाधिकारों में सबसे मूल्यवान् अधिकार धारा 19-1 में कहे गए हैं। इस धारा में अधिकार हैं—

(अ) व्याख्यान में अपना मत कहने तथा प्रकट करने की स्वतंत्रता;
(आ) बिना हथियारों के शान्तिपूर्वक एकत्र होने की स्वतंत्रता;
(इ) सभा अथवा यूनियन बनाने की स्वतंत्रता;
(ई) पूर्ण देश में घूमने-फिरने की स्वतंत्रता;
(उ) भारत देश में कहीं भी जाकर रहने की स्वतंत्रता;
(ऊ) कभी भी जायदाद खरीदने अथवा बेचने की स्वतंत्रता;
(ए) कोई भी पेशा अथवा व्यवसाय अथवा व्यापार स्वीकार करने की स्वतंत्रता।

इन स्वतंत्रताओं को संविधान में लिखकर भारत के संविधान-निर्माताओं ने संसार में अपनी बहुत प्रशंसा कराई है। परन्तु तनिक इसी धारा के 19-2 को ध्यान से पढ़ने से पता चलेगा कि यह प्रशंसा और वाह-वाह अकारण है। धारा 19-2 में कहा है कि जो कुछ इस 19-1 की धारा में कहा गया है वह उन कानूनों को रद्द नहीं कर सकेगा जो संविधान के आरम्भ होने के समय चालू हैं। न ही ये किसी राज्य को, ऐसा कानून बनाने से रोक सकेगा जो देश के राज्य की सुरक्षा, स्वतंत्रता और एकरूपता के लिए लगाया गया हो, अथवा जो विदेशी राज्यों से मित्रता के सम्बन्ध, शान्ति, व्यवसाय, सद्चरित्र को हानि पहुँचाने वाला हो अथवा जो किसी न्यायालय का अपमान अथवा किसी व्यक्ति का अपमान करने अथवा भड़काने के सम्बन्ध में हो।

अधिकार इतना बड़ा नहीं जितने बड़े अपवाद हैं। हम समझते हैं कि इन अपवादों की आवश्यकता नहीं थी। इनका दुरुपयोग अंग्रेज़ी राज्य में और स्वराज्य काल में भी होता रहा है। देश की परम विभूति श्यामाप्रसाद मुखर्जी की, इन्हीं अपवादों के कारण मृत्यु हुई थी।

इन्हीं अपवादों से सैकड़ों निरपराध व्यक्ति प्रतिवर्ष जेलों में ठूँस दिए जाते हैं। हम समझते हैं कि यह संविधान की भाषा में शिथिलता है जिस कारण अपवाद लिखने की आवश्यकता पड़ी है। यदि संविधान में अधिकारों को ठीक प्रकार से लिखा जाता तो उनको भंग करने वालों को सामान्य कानून से दण्ड विधान के अनुसार दण्ड दिया जा सकता था। परन्तु सत्य बात यह है कि पुलिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नालायकी को छुपाने के लिए अपराध करने से पहले ही अपराध की सम्भावना की कल्पना कर ली जाती है। इसी कारण ये अपवाद हैं। यह न्याय नहीं है। यह लंगड़े प्रबन्ध को पैबन्द लगाना ही है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत का संविधान पारित होने से पहले ही संयुक्त राष्ट्र संघ का मूलाधिकारों का चार्टर पारित हो चुका था। इस पर भी इस प्रकार के दिखावे की बात यहाँ लिख दी है।

हम समझते हैं कि मूलाधिकारों के विषय में तो एक ही धारा होनी चाहिए थी और वह कुछ इस प्रकार हो सकती थी—

राष्ट्र के घटकों के मूलाधिकारों को कोई भी राज्य रद्द नहीं कर सकता। वे अधिकार इस प्रकार हैं—

(अ) प्रत्येक सरकारी अधिकारी अथवा नागरिक के साथ उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार व्यवहार किया जाएगा। इस व्यवहार में मज़हब, लिंग, जन्म, जाति, स्थान इत्यादि के कारण भेदभाव नहीं हो सकेगा।

(आ) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह अपने विचार, अकेले अथवा सभा-समाजों में भाषण द्वारा अथवा लिखकर प्रकट कर सके।

(इ) सबको अधिकार होगा कि वह अपने युक्तियुक्त विचारों को प्रकट करने के लिए शान्तिमय उपायों से और बिना किसी अन्य के अधिकारों का उल्लंघन किए अथवा अशान्तिमय उपायों का प्रयोग किए संगठन तथा यूनियन बना सके।

(ई) अपनी रक्षा के लिए हथियारों के रखने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा परन्तु किसी भी सार्वजनिक स्थान पर हथियार लेकर जाने के लिए उचित अधिकारी से स्वीकृति लेनी होगी।

(उ) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह अपने परिश्रम के प्रयोग से, राज्य-नियम के अन्तर्गत रहते हुए धन अर्जन कर सके और उस धन से प्राप्त सम्पत्ति को रख सके। अर्जन पर और सम्पत्ति पर सीमा केवल दूसरे के वैसे ही अधिकारों की रक्षा में होगी।

हमारे विचार में इस प्रकार की एक धारा में सब अधिकारों का समावेश हो सकता है। वर्तमान संविधान में पुनरुक्ति बहुत है और फिर अधिक संख्या में अपवाद भरे पड़े हैं।

इस पर भी, हास्यास्पद बात यह है कि जो कुछ अधिकार इस अध्याय में संविधान में दिए गए हैं, 1949 से लेकर उनमें कटौती ही की जाती रही है। किसी भी अधिकार में आज तक वृद्धि नहीं हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तिम आघात जो इन अधिकारों पर किया गया है वह है संविधान में से सम्पत्ति रखने का अधिकार निकाल दिया जाना अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रेरणा दी गई है कि यदि वह अपनी आवश्यकता से अधिक धन अर्जन कर सकता है तो वह अधिक अर्जित धन को दुर्व्यसनों में व्यय कर दे।

सम्भावित अपराध की रोक-थाम के लिए उपाय यह नहीं कि संविधान में पुलिस को अधिकार दिया जाए कि नागरिकों को कष्ट दे।

1949 के संविधान में धारा 13-2 बनाई गई थी जिसका अभिप्राय यह था कि कोई राज्य विधान सभा अथवा संसद इन मूलाधिकारों को बदल नहीं सकती, न ही इनमें से कुछ की कटौती कर सकती है; परन्तु 1949 से ही इन अधिकारों में कटौती आरम्भ कर दी गई और अब तक 46, 47 के लगभग संविधान में संशोधन हो चुके हैं। जितने भी संशोधन मूलाधिकारों में हुए हैं वे मूलाधिकारों को कम करने वाले हुए हैं। कोई भी संशोधन मूलाधिकारों के विस्तार में नहीं हुआ।

13-2 को अब प्रभावहीन करने के लिए इसके नीचे एक उपधारा 13-4 लगा दी गई है जिसका अभिप्राय यह है कि इस धारा का प्रभाव उन संशोधनों पर नहीं होगा जो धारा 368 के अधीन किए जाएँगे। अभिप्राय यह कि संविधान की अन्य धाराओं में और इन मूलाधिकारों में कुछ अन्तर नहीं रह गया।

प्रश्न यह है कि तब इन अधिकारों को मूल (Fundamental) किसलिए कहा गया है ? मूल अधिकार तो पेड़ के मूल की भाँति अचल होने चाहिएँ।

वस्तुतः सब धोखे की टट्टी है। यह जानबूझकर ऐसा किया गया है अथवा अनभिज्ञ लोगों ने अनजाने में ये अपवाद बनाए हैं, कहना कठिन है। एक बात निर्विवाद है कि सन् 1947 में स्थापित संविधान सभा में कुछ ऐसे लोग थे जो ईमानदार थे और अपने अधिकार के लिए जीवन-भर लड़ते रहे थे। तब विस्मय यह होता है कि इस प्रकार का छिद्रों वाला संविधान क्यों बन गया है ?

जहाँ तक संविधान के बदलने का सम्बन्ध है हमारे विचार में मूलाधिकार को बदलने का अधिकार किसी भी राज्य विधान सभा अथवा संसद को नहीं होना चाहिए। इनमें परिवर्तन के लिए या तो 'जनगणना' (Referendum) हो सकती है अथवा नई विधान सभा बुलाई जा सकती है, जिससे पहले उन दोषों पर सार्वजनिक रूप में विचार हो सके, जिनमें परिवर्तन की आवश्यकता समझी गई हो।

शेष संविधान में दो प्रकार की बातें हैं। एक वे हैं जो राष्ट्र के अपने अधिकारों के साथ सम्बन्ध रखती हैं और दूसरी जो राज्य के करने की हैं। हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार में जो बातें तो राज्य के साथ सम्बन्ध रखती हैं उनका, धारा 368 के अधीन अथवा वैसी ही कोई अन्य धारा द्वारा संशोधन किया जा सकता है और जो धाराएँ राष्ट्र के अधिकारों से सम्बन्ध रखती हैं उनको बदलने के लिए राष्ट्र का एक विशेष अंग बनाना होगा। इसके विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

इस पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस संविधान में वे धाराएँ कौन-कौन-सी हैं जो राष्ट्र से ही सम्बन्ध रखती हैं और जिनका सीधा शासन (राज्य) से सम्बन्ध नहीं ?

राष्ट्र का अर्थ देश में बसा पूर्ण समाज है और राष्ट्र का एक अंग राज्य है जो देश में शान्ति-व्यवस्था स्थापित करने के लिए निर्माण किया जाता है।

उदाहरण के रूप में भाषा, शिक्षा, राष्ट्र की प्राचीन सम्पत्ति, इमारतें, स्मृति स्तम्भ, प्राचीन लेख इत्यादि राष्ट्र से सम्बन्ध रखते हैं। प्राचीन साहित्य राष्ट्र की सम्पत्ति है। जो कुछ भूमि से प्राप्त होता है, वह सब राष्ट्र की सम्पत्ति है। इन और इसी प्रकार के सब कार्यों में, साधनों और उपलब्धियों के प्रबन्ध के लिए पृथक्-पृथक् एक संगठन होना चाहिए, जिसके पास शासन का काम न हो उस संगठन के निर्णयों का पालन शासन करे। परन्तु शासन उनमें हस्तक्षेप न कर सके।

अत: वे सब धाराएँ और अनुसूचियाँ, जिनमें इन राष्ट्रीय कार्यों और सम्पत्तियों का सम्बन्ध है, वे सब राज्य से एक पृथक् संगठन के अधीन होनी चाहिएँ। वे सब कार्य जिनका राष्ट्र की मान-मर्यादा से सम्बन्ध है, एक धर्म समिति के अधीन होने चाहिएँ और वह शासन करने वाली संस्था इस समिति के निर्णय का पालन करे।

यह कैसे हो सकेगा, हम आगे चलकर बताएँगे। यहाँ तो हम राष्ट्र और राज्य के कार्यों में और अधिकारों में भेद बताने के लिए लिख रहे हैं। राष्ट्र के कुछ कार्य और अधिकार ऊपर बताए हैं। उनके विषय में राष्ट्र की एक संस्था राज्य करने वाली संस्था से पृथक् होनी चाहिए।

राज्य करने वाली संस्था राष्ट्रीय कार्य क्यों न करे? यह स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है। यह इस कारण कि राज्य बल-प्रयोग करने वाली संस्था है और राष्ट्रीय कार्य बल-प्रयोग से नहीं हो सकता। ये कार्य कोई ऐसी संस्था, जिसका बल प्रयोग करने से सम्बन्ध न हो, द्वारा होने चाहिए। जहाँ इस संस्था के विधि-विधान का कोई व्यक्ति मानने से इनकार करे अथवा उसका विरोध करे, तब वह संस्था राज्य से कह सकती है कि इसका पालन कराए। इस कार्य विभाग में और फिर दोनों प्रकार की संस्थाओं में समन्वय कैसे हो, इसका हम आगे चलकर वर्णन करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान संविधान में तो देश का प्रत्येक कार्य शासक (मंत्रिमण्डल) के अधीन कर दिया गया है। हम समझते हैं कि वर्तमान संविधान की यही सबसे बड़ी त्रुटि है। जब शासक किसी कार्य को नहीं कर सकता, तो वह राष्ट्र के स्वरूप को ही विकृत करने लगता है।

यही 1975 की आपात्-स्थिति में किया गया था। गलत अथवा ठीक, राष्ट्रपति यह समझता था कि उसे मंत्रिमण्डल का कहना मानना चाहिए। इस कारण उसने प्रधानमंत्री की आज्ञा को मान लिया। मंत्रिमण्डल अथवा प्रधानमंत्री ने जब अपने राज्य को डावाँडोल देखा तो आपात्-स्थिति के लिए राष्ट्रपति को कह दिया था।

यह संविधान में दोष के कारण हुआ था। इस विषय में भी हम आगे चलकर लिखेंगे।

यहाँ हम यह कहना चाहते हैं कि राष्ट्र की सम्पत्ति वह है जो राष्ट्र के पूर्वजों से राष्ट्र को उत्तराधिकार में मिली है अथवा जो प्रकृति ने इस देश के राष्ट्र को दी है। यह सम्पत्ति प्राकृतिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक हो सकती है, इसमें शासन हेराफेरी नहीं कर सकता।

शासन तो इस सम्पत्ति को देश और विदेश में लुटाने लग जाएगा।

अत: संविधान में इस उत्तराधिकार में मिली सम्पत्ति की देख-रेख के लिए राष्ट्र समिति (धर्म समिति) को अधिकार हो। इस राष्ट्र समिति का निर्माण शासन समिति से पृथक् हो।

राष्ट्र समिति का नाम हम धर्म समिति रखना चाहते हैं।

अत: संविधान में वे कार्य पृथक् कर देने होंगे जो राष्ट्र के अस्तित्व और विभूति की रक्षा के लिए हैं। उनको लागू शासन करे, परन्तु यदि कोई विधि-विधान जो राष्ट्र (धर्म) समिति बनाए उनको शासन लागू न कर सके तो या तो धर्म समिति को अपना विधि-विधान बदलना पड़ेगा अथवा शासन को बदलना पड़ेगा। यह कैसे हो सकेगा इसका वर्णन राष्ट्र की बनावट करते हुए हम करेंगे।

जो बात हम यहाँ कह रहे हैं वह यह है कि संविधान के तीन अंग हैं। एक है मूलाधिकार। दूसरे, राष्ट्र के घटकों के अधिकार और तीसरे, शासन की सुविधाएँ जिससे शासन चल सके।

इनमें मूलाधिकार तो संविधान में तब ही बदले जा सकें जब कोई नई संविधान सभा, जो इस कार्य के लिए निर्मित की गई हो, निर्णय करे अथवा यह पूर्ण राष्ट्र के घटकों की जनगणना (Referendum) से हो सके।

शासन की सुविधाएँ शासन समिति अथवा समितियाँ बदल सकें परन्तु राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी संविधान की धाराएँ तो धर्म समिति ही बदल सके। इस विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

इस सबका निष्कर्ष यह है कि मूलाधिकारों के अतिरिक्त देश के दो प्रकार के कार्य होंगे। एक कानून बनाना और दूसरे कानून पालन कराना। दोनों के लिए पृथक्-पृथक् संस्थाएँ हों। यदि शासन करने वालों को कानून बनाने का अधिकार भी दिया गया तो एक यह नगर-कोतवाल को कानून बनाने का अधिकार देने के समान हो जाएगा। यही वर्तमान लोक सभा कर रही है।

: 7 :

वर्तमान लोक सभा

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वर्तमान लोक सभा राष्ट्र सभा नहीं है? एक प्रकार से यह राष्ट्र सभा कही जा सकती है, क्योंकि यह पूर्ण राष्ट्र के वयस्क घटकों की राय से बनी है। परन्तु राष्ट्र सभा उन विषयों पर ही व्यवहार कर सकती है जो राष्ट्र के हैं। तब वह शासन स्वयं नहीं कर सकती। शासन करने के लिए यह शासन को आदेश दे सकती है।

लोक सभा में मंत्रिमण्डल शासन करता है, विधि-विधान भी बनाता है और निर्वाचनों के समय अपना पूरा बल अपने दल की विजय पर भी लगाता है। इससे यह कहना गलत नहीं होगा कि लोक सभा राष्ट्र सभा नहीं है। इस प्रकार शासन पक्षपातपूर्ण हो गया कहा जा सकता है।

यही आपत्ति इन्दिरा गांधी की मोरारजी देसाई के मंत्रिमण्डल के विपरीत थी। इन्दिरा गांधी का कहना था कि शासन उसके विपक्षियों का है। उस शासन द्वारा नियुक्त कमीशनों की जाँच पक्षपातपूर्ण है और शासन जो उस पर मुकद्दमे चला रहा है विपक्षियों के पक्षपातपूर्ण विचारों का परिणाम है। यही कारण है कि इन्दिरा गांधी का बहुमत हो जाने पर मुकद्दमे वापस ले लिये गए थे। अब लोकदल तथा भारतीय जनता पार्टी इत्यादि दलों को आपत्ति है कि सरकार का मुकद्दमा वापस ले लेना एक राजनीतिक कार्य है।

इस प्रकार के कार्य वर्तमान लोक सभा में नित्य होते देखे जाते हैं।

शासन निर्दलीय होना चाहिए, परन्तु राष्ट्र सभा में दल हो सकते हैं। उसमें अनेक विषयों पर मतभेद हो सकता है। अतः हमारा मत है कि वर्तमान लोक सभा पूर्ण देश की प्रतिनिधि होते हुए भी एकपक्षीय बहुमत के अधीन होने के कारण शासन कार्य करने के अयोग्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक है कि राष्ट्र-सभा (धर्म समिति) में निर्णय बहुमत के अनुसार होंगे परन्तु उन निर्णयों का पूर्ण देश पर एक समान प्रभाव होना चाहिए। यह नहीं कि शासन एक दल के साथ एक व्यवहार करे और दूसरे दल के साथ दूसरा।

साथ ही शासन तो किसी सिद्धान्तात्मक बात को कार्य रूप देने के लिए बनाया जाता है। एक बार सिद्धान्त का निर्णय हो गया, तब उसका प्रयोग पूर्ण देश के घटकों पर एक समान हो और यह प्रयोग शासन द्वारा ही होता है।

हम एक उदाहरण से अपने इस कथन को स्पष्ट करना चाहते हैं। राष्ट्र सभा में यह निश्चय होता है कि जो आयकर नहीं देते उनको दण्ड दिया जाएगा। तब शासन यह नहीं देख सकता कि आय-कर न देने वाला इन्दिरा गांधी के दल का व्यक्ति है अथवा चरणसिंह के दल का। राष्ट्र सभा भी जब किसी सिद्धान्त का निर्णय करने लगती है तो यह किसी विचार, मज़हब, लिंग, जन्म, जाति अथवा स्थान के भेद से प्रभावित नहीं हो सकती। परन्तु यदि शासन राष्ट्र सभा के बहुमत के अधीन होगा तो वह कर-वंचकों को दण्ड देते समय या तो अपने पक्ष के लोगों को दण्ड देगा ही नहीं अथवा देगा तो इतना कड़ा नहीं देगा जितना विपक्षी दल के लोगों को देगा।

एक समय यह समाचार था कि सुरक्षा मंत्री की ओर आयकर के सहस्रों रुपये बकाया थे। ये कई वर्षों से चले आ रहे थे और लेखक को यह भी विदित है कि उससे कई वर्ष पुरानी अदायगी की रसीद माँगी गई थी जो वह इन्कम टैक्स ऑफिस में ही भूल से जमा करा चुका था। आयकर अधिकारियों ने अपने रिकॉर्ड देखे नहीं और लेखक को रसीद पुनः दिखाने का नोटिस दे दिया।

अदायगी बैंक के द्वारा की गई थी, अतः बैंक वालों से चैक नम्बर बताकर अदायगी का सर्टिफिकेट माँगा गया। बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो चुका था। अतः बैंक सर्टिफिकेट मिलने में देरी हो गई। निर्धारित तिथि तक सर्टिफिकेट नहीं मिल सका तो लेखक को जो कठिनाई हुई तथा उस कठिनाई को उसने कैसे पार किया, यह यहाँ नहीं लिखा जा सकता। सुरक्षा मंत्री ने तो वर्षों से कर का भुगतान ही नहीं किया था।

इसी प्रकार जो लोग 31 दिसम्बर, 1979 को अपराधी मान अदालतों में अपराधी कहे जाते थे, वे 5 जनवरी 1980 को निर्दोष समझ लिये गए। यह इस कारण कि पाँच दिनों में लोक सभा में बहुमत बदल गया था। इससे न्याय की दिशा भी बदल गई। जिन्होंने यह किया उन्होंने कभी नहीं कहा कि वे पहले अन्याय कर रहे थे और अब न्याय करने जा रहे हैं। न ही उन्होंने यह कहा कि अमुक-अमुक प्रमाण से वे अभियुक्तों को निर्दोष मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दुर्व्यवस्था का समाधान यही है कि राष्ट्र सभा शासन से पृथक् हो। शासन के निर्वाचन के लिए दलगत निर्वाचन न हों। उनका निर्वाचन व्यक्तियों की शासन करने में योग्यता के आधार पर हो।

परन्तु राष्ट्र की समस्याओं से उलझने में मतभेद हो सकता है और वहाँ दलबन्दी भी हो सकती है। उसमें जो बहुमत हो, वही विधान हो। परन्तु विधान होने के उपरान्त शासन सभा उस विधान को इस प्रकार व्यवहार में लाए जैसे मशीन होती है। वह दलों के विचार से भेदभाव नहीं कर सकती।

यह तब ही हो सकता है, जब शासन-समिति धर्म-समिति, जिसे हम राष्ट्र-समिति कहते हैं, से पृथक् हो।

यह हम आगे चलकर बताएँगे कि यह कैसे हो सकेगा।

वर्तमान लोक सभा दलगत होने से शासन का कार्य नहीं कर सकती। यह करती है तो अनधिकार चेष्टा करती है। परन्तु लोक सभा का बहुमत ही मंत्रिमण्डल बनाता है और वह मंत्रिमण्डल बहुमत के निर्माण में और लोक सभा के चुनावों पर प्रभाव डालता है और लोक सभा को दूषित कर देता है।

यह बात भारत में बहुत ही उग्र रूप में प्रकट हो रही है। यही कारण है कि हम यह सुझाव उपस्थित कर रहे हैं कि शासन करने वाले विधान बनाने वाले न हों।

अतः हमारा मत है कि वर्तमान लोक सभा न तो राष्ट्र सभा है, न ही यह शासन करने वाली सभा है। शासन दलगत नहीं हो सकता और, वर्तमान लोक सभा में मंत्रिमण्डल शासन भी करता है और विधान भी बनाता है।

Central Library
167971
Gurukul Kangri (Deemed to be University) Haridwar

: 8 :

वर्तमान राज्य सभा

वर्तमान राज्य सभा और लोक सभा में केवल एक अन्तर है। वह यह कि जहाँ लोक सभा सीधे राष्ट्र के वयस्क मतदाताओं से निर्वाचित होती है, वहाँ राज्य सभा लोक सभा के निर्वाचित तथा राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से निर्वाचित होती है। राज्य सभा में कुछ सदस्य राष्ट्रपति के द्वारा नामांकित होते हैं परन्तु राष्ट्रपति भी तो लोक सभा के निर्वाचन मंत्रिमण्डल के अधीन ही कार्य करता है। इस कारण हम लोक सभा तथा विधान सभाओं में अन्तर कुछ इस प्रकार समझते हैं जैसे कोई व्यक्ति अपना हाथ नाक को सीधा लगाए अथवा सिर के पीछे से घुमाकर लगाए। लोक सभा का निर्वाचन नाक को सीधे हाथ लगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और राज्य सभा सिर के पीछे से घुमाकर हाथ लगाना है।

दोनों में कुछ अन्तर नहीं है। हमारा विचार है कि वर्तमान राज्य सभा व्यर्थ का राष्ट्र पर बोझा है।

इस पर भी हम एक ऐसी सभा के पक्ष में हैं जो देश के उन विद्वानों की हो जो चुनावों की दल-दल से पृथक् रहकर अपने ज्ञान अर्जन में अधिक रुचि रखते हैं।

अथवा यह उन लोगों में से नामांकित की जाए जो योग्यता रखते हुए भी सामान्य जनता की दृष्टि में नहीं आते अर्थात् जो अपनी योग्यता का ढोल पीटना नहीं चाहते।

देश के व्यापार-मण्डल के लोगों में से, अध्यापक-वर्ग में से, कलाकारों में से, साधु स्वभाव और धर्म-कर्म में लीन लोगों में से जो उत्कृष्ट योग्यता रखने वाले हैं उनको आदर सहित नामांकित कर राज्य कार्य में उनसे सम्मति लेने के लिए उनकी एक सभा होनी ही चाहिए।

परन्तु यह तब ही हो सकेगा जब नामांकन करने वाला कोई ऐसा प्रबन्ध हो जो राजनीतिक विधानों से बाहर हो। हम समझते हैं कि ऐसा एक व्यक्ति निर्वाचित होना चाहिए। उसका नाम राष्ट्रपति रखा जा सकता है।

दूसरे शब्दों में, राज्य सभा राष्ट्रपति की नामांकित हो और राष्ट्रपति पूर्ण राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि होने से सर्वश्रेष्ठ माना जाए।

: 9 :

राष्ट्रपति

राष्ट्रपति किसे बनाया जाए? इसके विषय में हमारा मत है कि पूर्ण राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि होने से, और पूर्ण राष्ट्र के घटकों द्वारा चुना जाने से राष्ट्रपति पद का प्रत्याशी दलगत नहीं होना चाहिए। देश के दलों को इसके चुनाव में भाग नहीं लेने देना चाहिए। राष्ट्रपति अपने गुणों के कारण ही निर्वाचित होना चाहिए। किसी व्यक्ति के जीवन-चरित्र और देश के प्रति कार्यों का ही विचार कर राष्ट्रपति का निर्वाचन होना चाहिए। राजनीतिक दलबन्दी से जो बाहर हो, न्याय बुद्धि और कार्य-कुशलता पर जिसका विश्वास हो, वही इस पद पर निर्वाचित होना चाहिए।

आज यूरोप का भूमण्डल पर आतंक तथा प्रभाव है। यह इस कारण कि सत्रहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक यूरोपीय जातियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमण्डल के सरल चित्त देशों को बल-छल से जीत कर उनको अपनी शिक्षा भी देती रही हैं। एक धूर्त चोर डाकू की भाँति जिन-जिनको वे अपने अधीन करते रहे हैं, उनकी मौलिक प्रतिभा को विलुप्त करने के लिए अपनी दूषित विकृत शिक्षा का उसमें समावेश करते रहे हैं।

भारत उनकी नीति का स्पष्ट उदाहरण है। ज्यों ही ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन यहाँ स्थापित हुआ राज्य ने अपने ढंग की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी और उस शिक्षा से शिक्षितों को राजकीय सेवाओं में मान्यता देने लगा तथा अन्य सब को मूर्ख, गंवार, अनपढ़ घोषित करता रहा।

परिणाम यह हुआ कि इस अंग्रेजी ढंग की शिक्षा से शिक्षित जन, भारत का संविधान बनाने लगे तो उदाहरण ब्रिटिश पार्लियामेंट, अमेरिकन तथा फ्रांस का संविधान इत्यादि लेते रहे हैं और भारत की प्रतिभा को त्याज्य मानते रहे हैं।

हम समझते हैं कि—

(1) राष्ट्रपति राष्ट्र का संरक्षक और प्रतिनिधि है इस कारण पूर्ण राष्ट्र के वयस्क घटकों द्वारा सीधा निर्वाचित होना चाहिए।

(2) राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी शिक्षित और अनुभवी व्यक्ति ही हो सके, जिसका पूर्व जीवन दलगत राजनीति से पृथक् रहा हो और जो देश के विभिन्न भागों में से कम से कम एक सौ एक का समर्थन प्राप्त कर सके। प्रत्याशी कोई राष्ट्र का घटक ही हो सके और उसे कोई भी राजनीतिक दल अपना प्रत्याशी घोषित न कर सके अथवा दल के नाम पर उसे मत नहीं दिलवा सके।

(3) यदि राष्ट्रपति पद के एक से अधिक प्रत्याशी हों और निर्वाचित प्रत्याशी को प्रयुक्त मतों में से पचास प्रतिशत से भी कम मत मिलें तो सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले दो प्रत्याशियों में पुनः निर्वाचन कराया जाए और दोनों में जो अधिक मत प्राप्त करे वह निर्वाचित समझा जाए।

(4) निर्वाचित राष्ट्रपति अपने अधीन राष्ट्र का कार्य करने वाली विभिन्न समितियों (धर्म समिति, शासन समिति और न्याय समिति) का निर्वाचन कराए।

(5) राष्ट्रपति वर्तमान राज्य सभा के स्थान एक विद्वत् सभा नामांकित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

: 1 :

राष्ट्र की तीन समितियाँ

अभी तक हमने राष्ट्र के स्वरूप और उसके कर्त्तव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है। यह हम पीछे बता चुके हैं कि शासन राष्ट्र के अन्तर्गत एक अंग है। यह भी हमने बताया है कि राज्य, राष्ट्र का एक शक्तिशाली अंग होने के कारण इसके उच्छृंखल हो जाने की सम्भावना रहती है। इस कारण राज्य के कर्त्तव्य और राज्य का राष्ट्र से सम्बन्ध के विषय में स्पष्ट कथन संविधान में होना आवश्यक है और इसका भी उल्लेख होना चाहिए कि राष्ट्र तथा राज्य में संवैधानिक सम्बन्धों में किस प्रकार परिवर्तन हो सके और किस प्रकार राज्य के उच्छृंखल हो जाने पर राष्ट्र उस पर नियंत्रण स्थापित कर सके।

राष्ट्र के सम्बन्ध में मुख्य पुरुष राष्ट्रपति माना जाए। जहाँ राष्ट्रपति पूर्ण राज्य के वयस्क घटकों से निर्वाचित व्यक्ति हो, वहाँ शासन-समिति भी पूर्ण राष्ट्र के घटों की प्रतिनिधि संस्था होनी चाहिए।

शासन-समिति का चुनाव भी राष्ट्रपति के चुनाव की भाँति पूर्ण देश के वयस्क घटकों द्वारा हो। अन्तर यह हो कि राष्ट्रपति पद के लिए पूर्ण देश एक ही व्यक्ति का चुनाव करे और शासन-समिति के लिए पूर्ण देश को लगभग 600 क्षेत्रों में विभक्त किया जाए तथा प्रत्येक क्षेत्र अपना एक-एक प्रतिनिधि चुनकर शासन-समिति में भेजे।

यह भी शर्त हो कि एक व्यक्ति केन्द्रीय शासन-समिति और राज्य शासन-समितियों में से एक का ही प्रतिनिधित्व करे। वह दोनों में एकदम नहीं रह सके।

शासन सभा के प्रत्याशी की योग्यता वही हो जो लोक सभा के प्रत्याशी की योग्यता निश्चित हो।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह हो कि निर्वाचन में सफल प्रत्याशी को प्रयुक्त मतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 50 प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त करने पड़ें। यदि किसी क्षेत्र में दो से अधिक प्रत्याशी हों तो संभव है कि विजयी प्रत्याशी को पूर्ण प्रयुक्त मतों के 50 प्रतिशत से कम मत भी पड़ सकते हैं। ऐसी अवस्था में वहाँ सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले दो प्रत्याशियों में दुबारा मत गणना होनी चाहिए। इस विषय में धाराएँ संविधान में होनी चाहिएँ।

धर्म-समिति (जो वास्तव में राष्ट्र-समिति होगी) का निर्वाचन वयस्क मत से नहीं होना चाहिए।

इसमें कारण है। वह यह कि इस समिति को राष्ट्र के हित-अहित की व्यवस्था करनी होगी। हित-अहित की बात सामान्य जनता समझ नहीं सकती। यदि समझ भी गई तो वक्ताओं के मनोद्गारों को उभारने वाले समाघोषों के अधीन मत का मिथ्या प्रयोग करेगी। इस कारण हम समझते हैं कि धर्म-समिति (Legislative body) के लिए विद्वान् व्यक्तियों का ही निर्वाचन होना चाहिए और विद्वानों को ही उन्हें निर्वाचित करना चाहिए। इस कारण कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि—

(1) धर्म-समिति के निर्माण के लिए प्रत्याशी वह हो सके जो किसी विश्वविद्यालय द्वारा कानून (Law) में स्नातक की उपाधि प्राप्य हो;

(2) जो कानूनी व्यवसाय कम-से-कम सात वर्षों से करता हो;

(3) जो विश्वविद्यालय के स्नातकों के बहुमत से निर्वाचित हो;

(4) एक विश्वविद्यालय से एक प्रतिनिधि धर्म-समिति के लिए निर्वाचित हो सके;

(5) निर्वाचित प्रत्याशी के लिए प्रयुक्त मतों के पचास प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त करने आवश्यक हों।

शासन समितियाँ केन्द्रों में और राज्यों में हों। उनको निर्वाचित करने के लिए मतदाता सांझे होंगे। क्षेत्र का प्रत्येक वयस्क व्यक्ति राष्ट्र घटक एवं नागरिक हो।

परन्तु धर्म-सभा तो केवल केन्द्र में ही हो। कानून व्यवस्था पूर्ण देश में एक समान हो। शासन राज्यों में पृथक्-पृथक् हो और शासन धर्म व्यवस्था के अनुसार हो।

पूर्ण देश के लिए एक ही न्याय-समिति हो। यह समिति पूर्ण देश की न्याय-व्यवस्था पर नियंत्रण करे।

वर्तमान संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति केन्द्र और राज्यों के मंत्रि-मण्डल करते हैं। हम इस ढंग को अशुद्ध मानते हैं। यद्यपि यह संविधान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था है कि इन नियुक्तियों में नियुक्त न्यायाधीशों से सम्मति ली जा सकती है परन्तु वे सम्मति ही दे सकते हैं। उनकी सम्मति मानना, न मानना मंत्रिमण्डलों के अधीन है।

हमारे विचार में पूर्ण देश की न्याय-व्यवस्था के लिए एक न्याय-समिति का गठन किया जाना चाहिए। इस समिति की सदस्यता के प्रत्याशी सर्वोच्च न्यायालयों के सेवामुक्त न्यायाधीश, उच्च न्यायालयों के सेवामुक्त न्यायाधीश, न्याय विद्यालयों के प्रिंसिपल तथा प्राध्यापक और कम से कम पन्द्रह वर्ष से न्याय-कार्य करने वाले वकील हो सकें। इनकी मतदाता सूची उसी प्रकार तैयार रहा करे जैसे शासन-समिति की मतदाता सूची तैयार रहती है और इसमें मतदाता भी विश्वविद्यालयों के स्नातक ही हों।

इस न्याय-समिति को अधिकार हो कि वह बस्ती के तहसीलदार से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति कर सके। पुलिस मैजिस्ट्रेट और शासन के सलाहकार न्याय अधिकारी इत्यादि भी इनमें सम्मिलित हों।

इन अधिकारियों को सेवामुक्त, इनके स्थानान्तरण इत्यादि के नियम-अधिनियम यह न्याय-समिति ही बनाए और उनमें संशोधन किया करे। उन कार्यों का चालन न्याय-समिति द्वारा नियुक्त समितियाँ करें।

इस समिति के अधीन न्यायकर्ता शासन नहीं करें। शासन अधिकारी शासन-समिति के अधीन हों और वे न्यायकर्ता न हो सकें।

पुलिस मैजिस्ट्रेटों का कर्त्तव्य हो कि जब कभी भी पुलिस अधिकारी उनसे न्याय सम्बन्धी राय माँगे तो वे निष्पक्ष राय दें, परन्तु शासन सम्बन्धी आदेश न दें। वे केवल कानूनी परामर्शदाता हों। इसी प्रकार केन्द्र और राज्यों की शासन-समितियों के कानूनी राय देने वाले राय दिया करें। उनकी नियुक्ति तो न्याय-समितियाँ करें, परन्तु कार्य पुलिस और शासन-समितियाँ लिया करें।

: 2 :

राष्ट्र की तीनों समितियों का समन्वय

राष्ट्र को एक सजीव शरीर की भाँति कार्य करना चाहिए। शरीर की भाँति राष्ट्र के भी तीन मुख्य अंग हैं—(1) बुद्धि, (2) मन और इन्द्रियाँ तथा (3) शरीर। इन तीनों के अतिरिक्त एक चेतन आत्मा इन सबका स्वामी है।

राष्ट्र में बुद्धि है धर्म-समिति। शरीर में बुद्धि की भाँति यह धर्म-समिति राष्ट्र के कार्य को दिशा प्रदान करे। शरीर में मन और इन्द्रियों के समान राष्ट्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन-समिति को कार्य करता हम देखना चाहते हैं। शासन न केवल इन्द्रियों की भाँति शरीर का प्रबन्ध करता है वरन् मन की भाँति कल्पना भी करता है। राष्ट्र स्वयं अर्थात् पूर्ण समाज शरीर की भाँति है। वास्तव में बुद्धि, मन और इन्द्रियों की सेवा भी पूर्ण शरीर के लिए ही होती है। इसी प्रकार धर्म-समिति, शासन-समिति इत्यादि भी पूर्ण समाज की सेवा के लिए ही होती हैं।

शरीर में जीवात्मा होता है जो शरीर का स्वामी माना जाता है। राष्ट्र में जीवात्मा का स्थान राष्ट्रपति है। वह राष्ट्र का स्वामी भी है और राष्ट्र का सबसे बड़ा सेवक भी।

राष्ट्रपति जीवात्मा के समान पूर्ण शरीर से पृथक् परन्तु पूर्ण शरीर का संचालन करने वाला है। राष्ट्रपति ही धर्म-समिति और शासन-समिति का निर्वाचन कराता है और उनसे कार्य लेता है।

धर्म-समिति बुद्धि की स्थानापन्न होने के कारण राष्ट्र के विद्वानों की प्रतिनिधियों की होनी चाहिए। वर्तमान युग में विद्वान् तो विश्वविद्यालयों के स्नातक ही माने जाएँगे। अतः हमारा मत है कि धर्म-समिति देश-भर के विश्वविद्यालयों के जीवित स्नातकों की प्रतिनिधि सभा होनी चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय का कम से कम एक प्रतिनिधि इस समिति में हो। इसके प्रतिनिधियों को चुनने वाले स्नातक मतदाता हों। एक स्नातक का एक मत हो। इस समिति के प्रत्याशी के लिए भी योग्यता निश्चित होनी चाहिए। हमारा मत है कि केवल कानून (जिसे हम धर्म कहते हैं) के स्नातकों में से ही कोई, जिसे कानूनी कार्य करते हुए कम से कम सात वर्ष हो चुके हों, प्रत्याशी हो सके।

जैसाकि हम ऊपर बता चुके हैं निर्वाचन में सफल प्रत्याशी को प्रयुक्त मतों में से पचास प्रतिशत से अधिक मत लेने आवश्यक हों। जब प्रत्याशी दो से अधिक हों और सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले के पचास प्रतिशत मत न हों तो उस अवस्था में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले दो प्रत्याशियों में पुनः मतदान कराना चाहिए और अधिक मत लेने वाला सफल व्यक्ति ही धर्म समिति का सदस्य हो। वह अपने विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करे। मतदान विश्वविद्यालय के केन्द्र पर ही हो और यथासम्भव विश्वविद्यालयों की देख-रेख में हो।

राष्ट्र का दूसरा सक्रिय अंग हो शासन-समिति। शासन-समिति पूर्ण देश की वयस्क जनों की निर्वाचित प्रतिनिधि समिति हो। पूर्ण देश 600 क्षेत्रों में बाँट दिया जाए और प्रत्येक क्षेत्र एक-एक प्रतिनिधि का निर्वाचन करे। इस निर्वाचन में प्रत्याशी की वही योग्यता हो जो आजकल की लोक सभा के सदस्य की होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु शासन-समिति के निर्वाचन के लिए भी सफल प्रत्याशी को प्रयुक्त मतों से पचास प्रतिशत से अधिक मत लेने आवश्यक हों। जहाँ दो से अधिक प्रत्याशी हों, वहाँ ऐसा हो सकता है कि किसी भी प्रत्याशी को प्रयुक्त मतों का पचास प्रतिशत न मिले। उनमें दो सबसे अधिक मत लेने वालों में पुनः निर्वाचन हो। और अधिक मत प्राप्त करने वाले को निर्वाचित समझा जाए।

राष्ट्र में एक न्याय-समिति भी होगी। वर्तमान संविधान में न्यायाधीश की नियुक्ति मंत्रिमण्डल करता है। हम इसे उचित नहीं समझते। यद्यपि प्रथा यह है कि मंत्री पहले न्यायाधीशों से सम्मति ले सकता है परन्तु यह सम्मति मात्र ही है और नियुक्ति मंत्रिमण्डल की इच्छा से होती है। यह एक अशुद्ध प्रथा है। हम चाहते हैं कि राष्ट्र एक तीसरी समिति निर्माण करे। इसको न्याय-समिति अथवा न्यायाधिकरण कह सकते हैं। इसमें दस-दस विश्वविद्यालयों का एक-एक प्रतिनिधि हो और विश्वविद्यालयों के स्नातक ही मतदाता हों। इस समिति के प्रत्याशी सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों के सेवामुक्त न्यायाधीश हों तथा कानूनी कॉलेजों के प्रिन्सिपल तथा प्राध्यापक एवं कानूनी कार्य करने वाले जो पन्द्रह वर्ष तक कानून का कार्य कर चुके हों, लोग हों। इनके निर्वाचन विश्वविद्यालयों के केन्द्र में हों और सफल प्रत्याशी को धर्म-समिति अथवा शासन-समिति के सदस्यों की भाँति पचास प्रतिशत से अधिक मत प्राप्त करने आवश्यक हों।

राष्ट्र के इन तीन अंगों और पूर्ण राष्ट्र के ऊपर राष्ट्रपति हो। यह पूर्ण देश का एक ही प्रतिनिधि हो।

राष्ट्रपति के अधीन राष्ट्र का पूर्ण कार्य हो। राष्ट्रपति का कार्यालय राष्ट्र की तीनों समितियों के कार्यों का समन्वय करने वाला हो। राष्ट्रपति स्वयं कुछ कार्य नहीं कर सके। जब कभी इसे कुछ कार्य करना हो, तो यह धर्म सभा के समक्ष अपनी बात उपस्थित करे और जब धर्म-समिति स्वीकार करे तो उसे कार्यान्वित करने के लिए शासन-समिति को भेज दे।

राष्ट्र का कोई भी अंग धर्म-समिति, शासन-समिति अथवा न्याय-समिति और राष्ट्रपति स्वयं भी, जब राष्ट्र में कुछ करने का विचार करे तो उसका प्रस्ताव पहले धर्म-समिति के पास जाए और वहाँ से स्वीकार होने पर उचित स्थान पर कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रपति के द्वारा भेजा जाए। धर्म-समिति की स्वीकृति के बिना कोई कार्य न हो सके।

यदि किसी समय धर्म-समिति और शासन-समिति में किसी विषय पर मतभेद हो तब राष्ट्रपति उनमें समन्वय कराने का यत्न करे। सर्वोच्च न्यायालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भी सहायता ली जा सके। इस पर भी समन्वय न होने पर दोनों समितियों अथवा एक समिति का पुनः निर्वाचन (Mid-term poll) हो।

न्याय-समिति तहसील के तहसीलदार से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तक (न्याय का कार्य करने वालों) की नियुक्ति, उनके तबादले, उनकी छुट्टी तथा समय से पूर्व उनको सेवामुक्त कर सके।

न्यायाधीश एक बार नियुक्त होने के उपरान्त निकाला न जा सके।

इसमें अपवाद होंगे न्यायाधीश का नैतिक दोष, स्वास्थ्य का कारण अथवा उसकी अपनी इच्छा।

धर्म-समिति शासन न करे, और शासन-समिति व्यवस्था न करे, यही राष्ट्र कल्याण का आधार है।

: 3 :

केन्द्र और राज्य

भारत संयुक्त राज्यों वाला देश हो। यह हम केवल इसके बड़ा होने के कारण ही नहीं कहते, वरन् इस कारण भी कहते हैं कि जब भारत प्राचीन काल में अजय था, तब भी यहाँ सैकड़ों बड़े-छोटे राज्य थे। हमारा मत यह है कि शासन छोटी-छोटी इकाइयों में भली प्रकार हो सकता है और वह राष्ट्र जिसका शासन सुख-शांति देने वाला हो, वह सदैव एक सुदृढ़ राष्ट्र होता है।

अतः भारत में छोटे-छोटे राज्य होने चाहिएँ। परन्तु भूमण्डल की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति को देखते हुए हम राष्ट्र को सुदृढ़ रखना चाहते हैं। शासन के विचार से राज्य स्वतंत्र हों, परन्तु अन्य बातों में देश के संयुक्त संविधान से बँधे हुए हों।

आज भूमण्डलीय तकनीकी उन्नति में असीम विकास होने के कारण देशों में यातायात में बहुत वृद्धि हुई है। शस्त्रास्त्र में भी विशेष प्रगति हुई है। एतदर्थ विदेशों के आक्रमण की सम्भावना भी बढ़ी है। अतः प्राचीन काल की व्यवस्था से भिन्न एक सुदृढ़ केन्द्र की आवश्यकता भी बढ़ी है। अतः देश को सुदृढ़ बन्धनों में बाँधने के लिए हम समझते हैं कि शिक्षा, शांति-व्यवस्था, सुरक्षा-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, यातायात, डाक-तार का प्रबन्ध इत्यादि केन्द्र के अधीन हों। देश की सड़कें, जल मार्ग और वायु मार्ग भी राष्ट्र को सुदृढ़ करते हैं।

अतः राष्ट्र के इन विभागों का ही सर्वप्रथम उल्लेख करना चाहते हैं। इनमें शिक्षा सर्वोपरि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि शिक्षा और भाषा पृथक्-पृथक् विषय हैं। देश की एक भाषा हो अथवा बीस भाषाएँ हों, यह पृथक् विषय है और शिक्षा केन्द्रीय स्तर पर अथवा राजकीय स्तर पर हो यह पृथक् विषय है।

हम यहाँ शिक्षा की बात कह रहे हैं। शिक्षा का प्रबन्ध शासन के अधीन तो होना चाहिए, परन्तु शिक्षा का विधि-विधान धर्म-समिति के निरीक्षण में निश्चय होना चाहिए। राष्ट्रपति धर्म-समिति के अधीन एक शिक्षा आयोग बनाए। यह आयोग शिक्षा-पद्धति, शिक्षा का स्तर और शिक्षा केन्द्रों का निर्णय करे। आयोग के निर्णय पर धर्म-समिति विचार करे और फिर स्वीकार कर शासन के पास भेज दे। शासन विश्वविद्यालय की स्थापना करे और उनका प्रबन्ध करे।

एक संक्षिप्त-सी शिक्षा की योजना हमने अपनी पुस्तक 'वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिंदू राष्ट्र' में प्रस्तुत की है। उसका संवैधानिक रूप यहाँ देना चाहते हैं।

शिक्षा शासन के प्रबन्ध में हो, परन्तु उसकी व्यवस्था धर्म-सभा शिक्षा आयोग के द्वारा करे और दिनानुदिन का प्रबन्ध विश्वविद्यालय स्वयं करे।

राष्ट्र का दूसरा कार्य जो केन्द्र के अधीन हो, वह देश में यातायात और डाक-तार का प्रबन्ध है। तीसरा केन्द्र का विषय शांति-व्यवस्था है। वर्तमान संविधान में यह आंशिक रूप में ही केन्द्र के पास है। मुख्य रूप में यह राज्यों का विषय है।

हमारे विचार में पूर्ण देश में एक समान व्यवस्था होनी चाहिए, यह नहीं, कि दक्षिण में कुछ, और उत्तर में कुछ तथा पश्चिम में कुछ अन्य हो।

शांति-व्यवस्था के लिए केवल दण्ड-विधान के एक होने की बात ही नहीं है, वरन् पुलिस का प्रबन्ध भी है। न्याय-व्यवस्था के विषय में हम केन्द्रीय न्याय समिति के गठन की बात कह चुके हैं और उसके अधीन न्यायाधिकरण की व्यवस्था के स्वरूप का भी वर्णन हमने किया है।

हमारे विचार में शांति-व्यवस्था का एक अंग पुलिस भी है। यह भी केन्द्रीय शासन के अधीन होनी चाहिए। राजकीय शासन-समितियाँ इस विषय में केन्द्र के अधीन कार्य करें तो अधिक ठीक होगा। तब पूर्ण देश में एक समान व्यवस्था हो सकेगी।

वर्तमान युग के यातायात के साधनों की उपस्थिति में ऐसा होना आवश्यक है।

केन्द्र का एक अन्य विषय है देश की सुरक्षा। यह शांति-व्यवस्था का सहयोगी विषय है। इसके लिए भी केन्द्र के पास साधन होने चाहिएँ। इसमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यों का पूर्ण सहयोग होना चाहिए।

विदेशों के साथ व्यापार भी केन्द्र का विषय होना चाहिए। व्यापार करना एक व्यक्ति का कार्य है। यह राज्य का कार्य नहीं है। इस पर भी विदेशों के साथ व्यापार पर नियन्त्रण केन्द्र की सरकार का होना ही चाहिए।

देश के भीतर के व्यवसाय और उद्योग राजकीय विषय होने चाहिएँ। इस विषय में भी हमारा मत है कि व्यापार और उद्योग व्यक्ति के अधिकार में हों। इन कार्यों को राज्य को स्वयं नहीं करना चाहिए, परन्तु उद्योग और व्यापार पर नियंत्रण राज्य का होना आवश्यक है। नियंत्रण का अर्थ स्वामित्व नहीं है।

राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार के पथ-प्रदर्शन में देश के भीतर और विदेशों से व्यापार का प्रबन्ध हो।

देश के भीतर के व्यापार और उद्योग पर राज्यों की शासन-समितियाँ देखरेख करें और विदेशों से व्यापार पर केन्द्र शासन-समिति नियंत्रण करे। शासन का स्वयं व्यापारी बनना ठीक नहीं है।

अर्थ-व्यवस्था के साथ ही कर-व्यवस्था का संबंध है। करों को हम दो श्रेणियों में बाँटते हैं। मनुष्य के परिश्रम से होने वाली आय पर कर और व्यापार तथा उद्योगों में होने वाली आय पर कर। व्यापार और उद्योगों पर कर को उत्पादन-शुल्क कहते हैं और मानव परिश्रम पर कर को आय-कर का नाम दिया जाता है।

व्यापार और उद्योगों पर शुल्क राज्यों को मिलना चाहिए और मानव-परिश्रम पर आयकर केन्द्र को मिलना चाहिए।

व्यापार और उद्योगों पर उत्पादन-कर लगाया जाए अथवा व्यापार तथा उद्योग की आय पर कर लगे, यह प्रश्न है। हम उत्पादन पर शुल्क को अनुचित मानते हैं। व्यापार तथा उद्योगों की आय पर शुल्क होना चाहिए। व्यापार पर उत्पादन-कर का नाम बिक्री कर (Sale tax) है।

इस कर के बँटवारे को हम एक उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिए, एक कपड़ा मिल में वार्षिक उत्पादन एक करोड़ रुपये का होता है। इसमें रुई कपास इत्यादि कच्चे माल का मूल्य बीस लाख रुपये है। बीस लाख रुपये ही कर्मचारियों का वेतन है। पूँजी जो लगभग तीस लाख होगी, पर ब्याज एक लाख अस्सी हजार रुपये होगा। इस पर लाभांश दस लाख रुपये। सब मिलकर खर्चा लगभग बावन लाख रुपये होगा और शेष व्यापार का लाभ होगा अड़तालीस लाख रुपये। हमारा अभिप्राय है कि अड़तालीस लाख पर कर लगना चाहिए न कि एक करोड़ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा आशय यह है कि कारखानों के बने माल की कीमत तो बाजार के दाम पर निश्चय होती है। यह उत्पादन और माँग पर निर्भर करता है। इस कारण किसी व्यापार अथवा उद्योग पर हुआ खर्च, मजदूरी तथा कर्मचारियों का वेतन निकालकर शेष लाभ पर कर होना चाहिए।

बने माल पर उत्पादन शुल्क नहीं होना चाहिए, वरन् उसके लाभ पर शुल्क होना चाहिए।

वर्तमान व्यवस्था में उद्योग के उत्पादन पर शुल्क लगाया जाता है। यह माल का दाम बढ़ाने में योग देता है। इससे यह कर वस्तुतः उपभोक्ताओं पर लगता है।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। एक मोटर कारखाने में मोटर की लागत है तीस हजार रुपये। वर्तमान पद्धति के अनुसार उत्पादन-शुल्क मोटरगाड़ी के कारखाने के मूल्य पर लगता है। सरकार प्रत्येक मोटरगाड़ी पर उतना ही कर लेती है जितना मोटर पर कारखाने में लागत आई है। इससे मोटर का मूल्य साठ हजार रुपये हो जाता है। यह कर वस्तुतः मोटर खरीदने वाले पर कर होता है।

हम चाहते हैं कि मोटर का मूल्य बाजार दर पर निश्चित होना चाहिए। मान लीजिए कि मोटर पर तीस हजार लागत आई है। वह बाजार में पैंतीस हजार की बिकती है तो पाँच हजार पर कर लगाना चाहिए। यह उत्पादन शुल्क होगा। इससे मोटर पर कर खरीदार को नहीं देना होगा प्रत्युत् कारखाने के मालिक को देना होगा। पाँच हजार पर यदि बीस प्रतिशत कर है तो एक हजार रुपये देकर मालिक शेष अपना लाभ समझेंगे।

यह योजना उन व्यापारों अथवा कारखानों के लिए है जिनके एक से अधिक मालिक हैं। उद्योग पर कर राज्य लगाये परन्तु व्यक्तिगत आय पर कर केन्द्र ले। इस योजना से केन्द्र की आय बढ़े।

विदेशों से संबंध केन्द्र के अधीन हों। केन्द्र देश के बाहर जाने वाले माल पर अथवा देश में आने वाले माल पर कर ले। माल का मूल्य तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के भाव के अनुसार ही होगा। इस कारण कर उस मूल्य पर लिया जाए न कि माल की मात्रा पर।

हमारा मत है कि इससे विदेशीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा और देश में बिकने वाला माल सस्ता होगा।

खेतों की उपज पर कर नहीं होना चाहिए। कुछ ऐसी उपज पर जो नकद दाम पर बिकती हैं सरकार कर लेती है। उदाहरण के रूप में चाय, कॉफी, तम्बाकू, गन्ना इत्यादि पर उत्पादन कर लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि यह कर की विधि दोषपूर्ण है। भूमि पर लाभ के अतिरिक्त उपज पर कर नहीं होना चाहिए। उपज पर कर उपज के उपभोक्ताओं पर कर लग जाता है।

यह चाय इत्यादि पर कर नहीं होता वरन् चाय पीने वालों पर कर है। यह एक नागरिक के जीवन को दूभर बनाता है।

हम समझते हैं कि वर्तमान कर-पद्धति अति दोषपूर्ण है। इसमें मूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

: 4 :

अर्थ-व्यवस्था का एक अन्य रूप भी है। वह है मालिक-कर्मचारियों का परस्पर संबंध। इसका कर-विभाग से संबंध नहीं है। यह एक पृथक् ही विषय है। इसे मालिक-कर्मचारी का विषय समझा जाता है। वास्तव में यह भी उपभोक्ताओं से संबंध रखता है।

उदाहरण के रूप में एक व्यवसाय में कर्मचारी वेतन के लिए झगड़ा करते हैं तो मालिक विवश हो वेतन बढ़ा देता है। इसका प्रभाव यह होता है कि उत्पादन का मूल्य बढ़ जाता है। इस प्रकार अनिवार्य रूप में वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते हैं।

कर्मचारी स्वयं भी उपभोक्ता है। उसके वेतन वृद्धि का प्रभाव दूसरे कारखाने की अथवा खेतों की उपज पर प्रकट होगा। एक कारखाने में यदि सामान्य कर्मचारी का वेतन एक सौ रुपये से बढ़कर एक सौ बीस रुपये हो जाता है तो दूसरे कारखाने के कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि करनी पड़ती है। इसका प्रभाव खेतों में काम करने वाले कर्मचारियों पर भी होता है। परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जाते हैं। तब कर्मचारी पुनः वृद्धि की माँग करते हैं। इस प्रकार चक्राकार गति से वेतन और वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने लगती है।

अभिप्राय: यह है कि मूल रूप में कर-व्यवस्था के सुधार से ही उपभोक्ताओं को सुविधा प्राप्त हो सकती है और फिर वेतन-वृद्धि के लिए कोई कारण नहीं रह जाता। अत: मालिक-कर्मचारी सम्बन्धों में विषमता के मूल में कर लगाने की व्यवस्था का दोषपूर्ण होना ही है।

अत: इस प्रकार जहाँ यह आवश्यक है कि करों में राज्यों तथा केन्द्र में उचित बँटवारा हो, वहाँ यह भी आवश्यक है कि कर-विधि में सुधार किया जाए।

अत: संविधान में केन्द्र तथा राज्य के सम्बन्धों में दो बातों का विचार रखना चाहिए। जहाँ दोनों सरकारों के कर्त्तव्यों का बँटवारा हो, वहाँ कर्त्तव्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन के लिए करों का भी बँटवारा किया जाए।

केन्द्र और राज्यों के कार्यों में बँटवारे को संविधान की अनुसूचियों में लिखा जाना चाहिए। सामान्य रूप में केन्द्र के कर्त्तव्य हों—(1) शिक्षा; (2) यातायात तथा डाक-व्यवस्था; (3) शान्ति-व्यवस्था; (4) सुरक्षा; (5) अर्थ-व्यवस्था; (6) अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध तथा राष्ट्र में एकता रखने के साधन और देश में राष्ट्रीय भाषा का विकास, (7) खनिज पदार्थों और अन्य प्राकृतिक साधनों पर नियंत्रण।

राजकीय विषय होते हैं—(1) कृषि; (2) शान्ति-व्यवस्था में सहयोग; (3) उद्योग-व्यापार, नगर और जनपद निगमों के प्रबन्ध को देखना; (4) राजकीय भाषाओं का विकास; जल तथा विद्युत का प्रबन्ध और शक्ति के स्रोतों का विकास।

इन और इसी प्रकार के कार्यों के लिए धन का केन्द्र तथा राज्यों में बँटवारा होना चाहिए।

राजकीय आय के स्रोत हैं—(1) भूमि कर, उद्योग कर, आभ्यंतरिक व्यापार कर, नगरों और जनपदों की आय पर कर; भूमि को बेचने पर आय और उपज की बिक्री से आय। ये सूचियाँ पूर्ण नहीं हैं। अतः केन्द्र तथा राज्यों की कर-व्यवस्था और कर्म-व्यवस्था में समय-समय पर अवलोकन होते रहना चाहिए और दोनों में समन्वय तथा संयुक्त परामर्श होते रहना चाहिए।

सिद्धान्त यह है कि कर उपज तथा निर्माण की मात्रा पर नहीं होना चाहिए वरन् उससे होने वाली आय पर होना चाहिए।

इस व्यवस्था से यह सम्भव है कि केन्द्र और राजकीय आय में कमी हो, परन्तु देश में उपभोक्ताओं का खर्चा भी तो कम होगा और इससे कर्मचारियों को वेतन भी कम देना पड़ेगा। वस्तुओं का मूल्य इत्यादि सब कम हो जाएँगे। सरकारी खर्च भी कम हो जाएगा।

जहाँ तक मालिक-कर्मचारियों के विवादों का सम्बन्ध है, साधारणतया उद्योग और व्यापार का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। हमारा अभिप्राय है कि व्यक्तिगत व्यापार और व्यक्तिगत उद्योग को उपमा देनी चाहिए। बड़े-बड़े कारखाने, बड़ी-बड़ी मशीनें और बहुत बड़े-बड़े फार्म उचित नहीं। घरेलू दस्तकारी (Cottage Industry) को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। एक व्यवसाय और उद्योग एक परिवार के लिए ही हो और बाहरी सेवकों की आवश्यकता न रहे।

जहाँ कहीं कभी बड़े कारखानों की आवश्यकता हो और कर्मचारी-मालिक के विवादों में निर्णय की आवश्यकता हो तो किसी भी प्रकार हड़ताल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नौबत नहीं आने देनी चाहिए।

हमारा अभिप्राय है कि ऐसे कानून बन सकते हैं जिनसे मज़दूरों की कठिनाइयों का निवारण किया जा सकता है, परन्तु उस निवारण में जब कभी भी कर्मचारियों को मालिक के व्यवहार पर आपत्ति हो तो उस आपत्ति की घोषणा और सूचना मालिक को एवं उस कार्य के लिए नियुक्त न्यायाधीश को पहले होनी चाहिए और इस घोषणा के विषय में एक नियत अवधि में प्रबन्ध कर विवाद, न्यायालय का विषय बन जाना चाहिए।

न्यायालय को विवाद की सूचना मिलते ही कुछ घंटों के भीतर एक न्यायाधीश विवाद स्थल पर पहुँचकर विवाद का अस्थायी निर्णय दे दे। यह निर्णय एक न्यायालय का निर्णय समझा जाए और इसकी अवहेलना न्यायालय का अपमान समझा जाए। उस निर्णय पर आपत्ति हो तो उससे उच्च न्यायालय में अर्जी करनी चाहिए। उसके लिए पृथक् न्यायाधीश हों, जिससे निर्णय शीघ्रातिशीघ्र हो सके।

इस पर भी हमारा मत है कि घरेलू दस्तकारियों को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने का यत्न होना चाहिए जिससे मालिक कर्मचारियों के विवाद न्यूनातिन्यून हों।

पूर्ण अर्थ-व्यवस्था और कर-व्यवस्था का उद्देश्य होना चाहिए कि मालिक-कर्मचारी विवाद न्यूनातिन्यून हों। यह तभी सम्भव है जब उद्योग और व्यापार-केन्द्र छोटे-छोटे होंगे। जहाँ इनका बड़ा होना अनिवार्य हो, वहाँ विवाद के शीघ्रातिशीघ्र निर्णय का प्रबन्ध हो।

यह हमारा सुविचारित मत है कि बड़े-बड़े कारखानों में उपज शीघ्र और अधिक मात्रा में तो हो सकती है, परन्तु सस्ती नहीं हो सकती।

अतः शीघ्र उत्पादन और अधिक उत्पादन के लिए बड़े-बड़े केन्द्रों के स्थान छोटे-छोटे अधिक संख्या में उत्पादन-केन्द्र बनाने को प्रोत्साहन दिया जाए। इससे जीवन सुलभ और सुखी होगा तथा बेकारी निर्मूल होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

: 1 :

नागरिकता

हमने राष्ट्र और राष्ट्र के घटकों का वर्णन किया है। एक राष्ट्र के घटक को अधिकार हो कि देश के किसी भी भाग में अबाध आ-जा सके। उस क्षेत्र के अतिरिक्त, जो देश की सुरक्षा के लिए रक्षित-स्थान घोषित हो, राष्ट्र का कोई भी घटक देश के किसी भी भाग में आ-जा सके, रह सके अथवा व्यवसाय कर सके।

परन्तु नागरिकता एक पृथक् स्थिति हो। नागरिक राज्य (प्रदेश) के साथ सम्बन्धित हों। जो व्यक्ति किसी राज्य में कम से कम पाँच वर्ष से रहता हुआ अपनी जीविका वहाँ चलाता रहा है, वह उस राज्य का नागरिक हो। कहने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र के घटकों को ही राज्य के नागरिकों की गणना में लिया जा सकता है, यदि वह उस राज्य में कम से कम पाँच वर्ष से रहता हो और वहाँ जीविकोपार्जन करता रहा हो।

राज्य की शासन-समितियों के निर्वाचन का अधिकार राज्य के नागरिकों को हो। ये नागरिक ही राज्यान्तर्गत नगर-निगम, जनपद-निगम एवं ग्राम पंचायतों के निर्वाचनों में भाग ले सकें।

अतः देश में दो प्रकार के जन-गणना के रजिस्टर हों। एक राष्ट्र के घटकों का। यदि राष्ट्र का नाम भारतीय हो तो उस रजिस्टर में दर्ज घटक भारतीय कहायें और यदि राष्ट्र हिन्दू हो तो रजिस्टर में दर्ज घटक हिन्दू कहायें। इस रजिस्टर में जिनका नाम हो, वे राष्ट्र की समितियों के निर्वाचन में भाग ले सकें।

दूसरी नागरिकता राजकीय हो। देश में जितने भी राज्य हों उनके नागरिक अपने राज्य की शासन समिति, नगर, जनपद, निगम तथा ग्राम-पंचायत के चुनावों में ही भाग ले सकें।

कोई भी, किसी भी राज्य का नागरक ऐसा न हो, जो राष्ट्र का घटक न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वाचन के समय राष्ट्र का कोई भी घटक कहीं भी हो सकता है। देश के बाहर भी हो सकता है। इस पर भी उसके अधिकार राष्ट्रीय घटक के-से रहें और वह उचित निर्वाचनों में डाक द्वारा मत दे सके।

इसी प्रकार किसी भी राज्य का नागरिक निर्वाचन के समय कहीं भी हो, अपना मत डाक द्वारा दे सके।

अतः राष्ट्र के घटकों का और राज्य के नागरिकों का रजिस्टर पृथक्-पृथक् हो।

राष्ट्रीयता और नागरिकता परस्पर विरोधी नहीं हो सकतीं। कारण यह कि कोई भी राष्ट्र का घटक हुए बिना राज्य का नागरिक नहीं हो सकेगा।

: 2 :

राज्यपाल

राज्यपालों का निर्वाचन नहीं होना चाहिए। राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाएँ। ये राज्यों में शासन-समिति पर वैसे ही नियंत्रण रखें जैसे राष्ट्रपति केन्द्र की शासन समिति पर नियंत्रण रखता है।

केन्द्र में नियंत्रण तो धर्म-समिति और न्याय-अधिकरण का होता है परन्तु राष्ट्रपति माध्यम है उनके नियंत्रण का। इसी प्रकार केन्द्र की धर्म सभा और न्यायाधिकरण का नियंत्रण राज्य के शासन पर रखने का माध्यम राज्यपाल हों।

राज्यों में शासन के विषय वे हों जो संविधान की अनुसूचियों में राज्यों के लिए कहे जाएँ। उन विषयों में ही राज्यपाल का शासन पर अंकुश हो।

किसी प्रकार का विवाद राज्यपाल और शासन में उठ खड़ा होने पर उसमें राष्ट्रपति निर्णय दे। इस पर भी समाधान न होने पर सर्वोच्च न्यायालय निर्णय दे। यदि तब भी विवाद समाप्त न हो तो राष्ट्रपति राज्यपाल को बदल सके, अथवा राज्य-शासन-समिति का नव-निर्वाचन कराये।

केन्द्रीय शासन-समिति और राज्य शासन-समिति में मतभेद होने पर राष्ट्रपति अथवा सर्वोच्च न्यायालय निर्णय दे। मतभेद न मिटने पर राष्ट्रपति एक अथवा दोनों शासन-समितियों का नव-निर्वाचन करा सकता है।

: 3 :

राष्ट्र के गौण अंग

(1) निर्वाचन आयोग (Election Commission)

(2) लेखा निरीक्षक आयोग (Audit Commission)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) शिक्षा आयोग (Education Commisssion)

(4) अर्थ आयोग (Commerce and Industrial Commission)

(5) सुरक्षा आयोग (Defence Commission)

इनको गौण इस कारण कहा है क्योंकि इनका सामान्य जनता से किसी प्रकार का सीधा सम्बन्ध नहीं होता। ये राष्ट्र के इन कार्यों को करने के लिए शासन का रूप ही हैं। इन सब आयोगों के स्थायी सदस्य बारह-बारह हों। छह सदस्य शासन-समिति के, तीन धर्म-समिति के और तीन सदस्य राष्ट्रपति विशेषज्ञों में से मनोनीत करे।

इन बारह सदस्यों के अतिरिक्त समय-समय पर आवश्यकतानुसार सीमित समय के लिए आयोग राज्यों के शासन से सरकारी सदस्य नियुक्त कर सकें। इनके कार्य प्रायः गुप्त हुआ करें। ये राष्ट्रपति की इन विभागों में सहायता करें।

(1) निर्वाचन आयोग राष्ट्र में होने वाले सब निर्वाचनों का प्रबन्ध करे।

इसके प्रबन्ध राष्ट्रपति के द्वारा घोषित हुआ करें ! यदि उचित समझा जाए तो यह आयोग अपने-अपने राज्य में उप-आयोग भी नियुक्त कर सके। आयोग का कार्य-क्षेत्र केन्द्र में अथवा राज्यों में भी हो।

(2) लेखा निरीक्षक आयोग का गठन भी उसी प्रकार हो, जिस प्रकार निर्वाचन आयोग का हो।

(3) शिक्षा आयोग में पूर्वोक्त बारह सदस्यों के अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि भी हों। प्रत्येक राज्य के विश्वविद्यालय अपना एक-एक प्रतिनिधि इस आयोग में भेज सकें। यह आयोग पूर्ण देश की शिक्षा का प्रबन्ध करे। धर्म-समिति तो शिक्षा का उद्देश्य निश्चय करे। यह आयोग देश में विश्वविद्यालयों की स्थापना इत्यादि के विषय में विचार करे और विश्वविद्यालय की शिक्षा का पाठ्यक्रम और परीक्षा तथा पठन का प्रबन्ध करें।

देश-भर की प्रकाशन संस्थाएँ, नाटक संस्थान, चल-चित्र संस्थान, समाचार-पत्र तथा अन्य सब प्रकार की पत्रिकाएँ इस आयोग के अधीन हों।

(4) अर्थ-आयोग के निरीक्षण में देश के बैंक, कम्पनियाँ, देश में सहकारी समितियाँ, व्यापार और आयोग संस्थान हों। इसमें भी शिक्षा समिति की भाँति बारह पूर्वोक्त सदस्यों के साथ देश के भिन्न-भिन्न उद्योग तथा व्यापार संस्थानों (Industrial and Commerce Chambers) के प्रतिनिधि हों।

(5) सुरक्षा आयोग वैसे ही हो जैसे निर्वाचन एवं लेखा आयोग हों। इस आयोग के विभाग राज्यों में नहीं होने चाहिएँ।

इन आयोगों का कार्य अपने-अपने विभाग में नीति पर नियंत्रण रखना हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये आयोग दिनानुदिन के कार्यों में हस्तक्षेप न करें। कार्य में नीति का निश्चय धर्म-समिति में हो। उसके संचालन की देख-रेख ये आयोग करें।

शिक्षा-आयोग के उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध विश्वविद्यालयों का हो। वे अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध करें परन्तु शिक्षा में नीति का निर्देशन धर्म-समिति करे। उसका पालन करना इस आयोग का कार्य हो।

पब्लिक स्कूल भी हो सकें अथवा जनता की दान-दक्षिणा पर चलने वाले पाठशालाएँ, विद्यालय और महाविद्यालय भी हो सकें। उन स्कूलों में वे अपनी विशेष शिक्षा के साथ-साथ विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत शिक्षा भी दें।

: 4 :

केन्द्र और राज्यों के लिए नीति-निर्देशक सिद्धान्त

भारत के वर्तमान संविधान में एक अध्याय है जिसका शीर्षक है, 'राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त।' इस अध्याय का आरम्भ इस प्रकार किया गया है—

धारा 37—इस अध्याय में वर्णित सिद्धान्त को न्यायालय लागू नहीं कर सकेगा। इस पर भी राज्य इनको चालना देने के लिए कानून बना सकेगा।

38—राज्य देश के लोगों की भलाई के लिए तथा सामाजिक व्यवस्था लाने के लिए यत्न करेगा जिससे कि लोगों की भलाई हो सके। इसके लिए इतने प्रभावी यत्न करेगा कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याययुक्त व्यवस्था लायी जा सके और उसकी रक्षा की जा सके। इसके लिए राष्ट्रीय जीवन के तत्त्वों को सूचित किया जाएगा।

39—नीति के कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(1) नागरिक, पुरुष अथवा स्त्री वर्ग को समान रूप में यह अधिकार है कि उनको जीवन के साधन प्राप्त हों।

(2) समाज के भौतिक साधनों का स्वामित्व इस प्रकार बाँटा जाए जिससे सबकी समान भलाई हो सके।

(3) आर्थिक साधनों को ऐसे व्यवहार में लाया जाए कि धन किसी एक स्थान पर एकत्रित न हो सके। न ही उत्पादन के साधन सामान्य व्यक्ति को हानि पहुँचा सकें।

(4) समान काम के लिए पुरुष-स्त्री को समान वेतन मिल सके।

(5) कर्मचारियों के (पुरुष, स्त्री और बच्चों के) स्वाध्याय और सामर्थ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दुरुपयोग न किया जा सके। न ही आर्थिक आवश्यकताओं के लिए वे किसी ऐसे काम पर लगाये जा सकें जिनमें उनकी आयु और स्वास्थ्य बाधक हो।

(6) बच्चों को अवसर तथा सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें कि वे स्वस्थ वातावरण और स्वतंत्रता तथा मान के साथ उन्नति कर सकें और बच्चे तथा युवकों को, आवश्यकताओं के कारण ऐसे कार्यों में लगना न पड़े जो उनकी आयु और सामर्थ्य के अनुकूल न हों।

इसी रूप में से सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं।

इनके भाव श्रेष्ठ हैं, परन्तु संविधान में इनको रखने से, लोक सभा और राज्य विधान सभाओं को इनमें हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता है और यह अत्यन्त दूषित बात हो गई है।

हम यह ऊपर बता चुके हैं कि शासन शिक्षक नहीं हो सकता। यदि शासन शिक्षा देने वाला होगा तो वह शिक्षा आज्ञा का रूप हो जाएगी। वह शिक्षा नहीं रहेगी।

यह विश्वविद्यालयों का कर्त्तव्य है कि लोगों में नेक और परहित का स्वभाव उत्पन्न करें। यह शासन अथवा कानून का विषय नहीं है।

हम समझते हैं कि यह अध्याय संविधान का अंग नहीं होना चाहिए। इस अध्याय में वर्णित सिद्धान्तों का निश्चय करना विश्वविद्यालयों का काम हो सकता है। विश्वविद्यालय प्रेरणा से ही यह काम कर सकते हैं।

देश और राष्ट्र का दुर्भाग्य है कि हमारा संविधान बनाने वाले यह नहीं समझ सके कि शासन और एक स्कूल-कॉलेज में क्या अन्तर है। और परिणाम यह हुआ है कि ज्यों-ज्यों शासन इस देश में कानून बनाता जा रहा है त्यों-त्यों देश में नैतिक पतन तथा हरामखोरी बढ़ती जा रही है।

इन्हीं सिद्धान्तों के अधीन राज्य विधान सभाएँ यह निश्चय कर रही हैं कि अछूत कहे जाने वालों के बालकों तथा साधनविहीनों के बालकों के लिए शिक्षण संस्थाओं और सरकारी सेवाओं में स्थान सुरक्षित किए जाएँ और इस समय देश में इसी कारण एक गम्भीर अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि देश में एक नये प्रकार का विभाजन होने वाला है। अछूतों और पिछड़ी जाति के नेता यह माँग करने लगे हैं कि उनके समाज के प्रतिनिधियों के लिए मंत्रिमण्डल में, सचिवालयों, न्यायालयों, सेना तथा पुलिस की विशेष सेवाओं में स्थान सुरक्षित कर दिए जाएँ।

प्रश्न है क्यों? इसका उत्तर है कि क्योंकि वे अयोग्य हैं और मुकाबिले में सफल नहीं हो सकते, इस कारण उनके लिए स्थान सुरक्षित होने चाहिएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि यह अध्याय संविधान का अंग नहीं होना चाहिए। और कानून द्वारा ये बातें चलाई गईं तो देश रसातल को चला जाएगा।

शिक्षा में इन साधनहीन तथा अनपढ़ माता-पिता के बच्चों को पढ़ने और योग्य बनाने के लिए आर्थिक सहायता तो अवश्य दी जानी चाहिए। इनसे स्कूलों-कॉलिजों की फीस न ली जाए और पुस्तकें व भोजन इत्यादि की सुविधा इनको अवश्य मिले। परन्तु उन्नति अथवा प्रवेश बिना योग्यता प्राप्त किए न मिले। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। कुछ भी हो, यह संविधान का विषय नहीं है।

संविधान में इस प्रकार की बातें लिखने का परिणाम यह हो रहा है कि जाति और राष्ट्र के योग्य घटक सेवा से वंचित हो रहे हैं तथा अयोग्य उत्तरदायित्वपूर्ण स्थानों पर पहुँच रहे हैं। इस प्रकार की अयुक्ति-संगत बातों का संविधान में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

होना यह चाहिए कि राज्य के सब कार्यों में अछूत तथा पिछड़ी कही जाने वाली जातियों को उनकी जाति का विचार कर किसी कार्य से वर्जित नहीं किया जाए। स्त्रियों और बच्चों से कोई ऐसा कार्य न लिया जाए जो उनकी शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करे। परन्तु हम समझते हैं यह संविधान के मूलाधिकारों में सम्मिलित है। अतः यह अध्याय निरर्थक है।

अछूत, हीन तथा अछूत न माने जाएँ, यह शिक्षा का विषय है। अयोग्यों को, भले वे किसी भी जाति-बिरादरी के हों, ऐसे काम देना जिसके वे अयोग्य हैं, राष्ट्रद्रोह है। हम तो कहते हैं कि सरकारी सेवाएँ विश्वविद्यालय की डिग्रियों अथवा सर्टिफिकेटों पर न मिलें। प्रत्येक सरकारी विभाग अपनी विभागीय परीक्षाएँ ले और उन परीक्षाओं में कोई भी बैठ सके। विभाग में काम करने की शर्त और योग्यता की घोषणा हो जाए और एक साधारण-सा शुल्क प्राप्त कर प्रत्याशियों की परीक्षा ली जा सके। सेवाओं में अर्जी करते समय यदि किसी विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त हो तो वह लिखी जा सकती है, परन्तु परीक्षक उसका विचार छोड़कर परीक्षाएँ लें। इससे विश्वविद्यालय की शिक्षा का लक्ष्य शिक्षार्थियों में योग्यता उत्पन्न करना होगा न कि सेवा प्राप्त कराना।

यह तो है सिद्धान्त की बात। रही बात यह कि लोग स्वतः इन पिछड़े लोगों की सहायता नहीं करेंगे। हम समझते हैं कि उसके लिए कानून की आवश्यकता नहीं, प्रेरणा की आवश्यकता है। प्रेरणा देने की क्षमता राज्य में नहीं होती।

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक विचार के लोग सन् 1916 से अभी तक विशेष अधिकारों की धुरी पर खड़े हैं।

अंग्रेज़ी सरकार ने 1906 में मुसलमानों के लिए पहले राज्य सभाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान सुरक्षित किए थे। 1916 में देश के राजनीतिक नेताओं ने कौंसिलों में मुसलमानों के लिए स्थान सुरक्षित रखना स्वीकार किया। तब ब्रिटिश सरकार ने एक पग और बढ़ाया। वह यह कि मुसलमानों के लिए सरकारी सेवाओं में भी स्थान सुरक्षित किए। इसका भयंकर परिणाम ही देश-विभाजन हुआ।

अब भी 1917 की बात को ठीक समझ लोक सभा तथा विधान सभाएँ पिछड़ी जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रख रही हैं। अतः वे सरकारी सेवाओं में भी स्थान सुरक्षित करने की माँग करने लगे हैं। कई राज्यों ने संविधान के इस नीति-निर्देशक तत्त्व वाले अनुभाग का आश्रय लेकर सेवाओं में अछूतों इत्यादि के लिए स्थान सुरक्षित करने आरम्भ भी कर दिए हैं। कुछ तो यह भी माँग करने लगे हैं कि पुलिस और सेना में भी इन जातियों के घटकों के लिए स्थान सुरक्षित किए जाएँ।

अब 19 अप्रैल 1981 को लोक सभा ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया है कि अनुसूचित जातियों के लिए अधिकार सुरक्षित रहेंगे। हम समझते हैं कि घूम-घुमाव कर 1916 की स्थिति में हम आ खड़े हुए हैं। इसी कारण हम कह रहे हैं कि वर्तमान संविधान बदलने के योग्य हो गया है। इस संविधान में से बनी लोक सभा अनपढ़ों और अदूरदर्शी लोगों का मजमा मात्र रह गया है।

इनके चुनने वाले तो देशवासी हैं ही और हमारा विचार है कि देश में सही दिमाग लोग इस विधान को कभी भी पसन्द नहीं करेंगे। यह जो किया जा रहा है, देश में क्रान्ति तथा रक्तपात का आह्वान किया जा रहा है।

यह कुछ वैसा ही है जैसा फ्रांस में 1879 में तथा 1881 में हुआ था। क्रान्ति लाई गई थी अनपढ़, स्वार्थी और राज्य नियमों से अनभिज्ञ लोगों के द्वारा। फिर उसका जो परिणाम हुआ था, वह हमने इस पुस्तक के पूर्व के अध्याय में लिखा है।

हमारा मत है कि राष्ट्र के पिछड़े वर्गों को उठाने का उपाय होना चाहिए। परन्तु यह संविधान तथा कानून में दर्ज करने से नहीं होगा। संविधान तो कुछ ऐसा होना चाहिए जिसमें अधिकार गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार हों।

पिछड़ापन दूर किसी के करने से नहीं हो सकता, न ही यह कानून बनाने से हो सकेगा। यह राज्य का कार्य नहीं है, यह राष्ट्र का कार्य है।

इसी कारण हमने राष्ट्र और राज्य में भेद किया है। राष्ट्र की तीन समितियाँ हैं। उनमें केवल दो ही संस्थाएँ हैं जो इस समस्या को सुलझा सकती हैं।

पिछड़ापन, अछूतों की समस्या और निर्धनता कानून से नहीं मिट सकती। इसके लिए शिक्षा ही एक साधन है। बिना योग्यता के यदि अधिकार दिए जाएँगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो पूर्ण राष्ट्र का पतन होगा। यही भारत में हो रहा है।

पतन की पराकाष्ठा हो गई है कि लोक सभा में एक भी सदस्य आरक्षण के प्रस्ताव का विरोध नहीं कर सका।

यह बात ज्ञानवर्धन करने वाली होगी कि 1906 के कांग्रेस के निर्णय में एक महान् व्यक्ति पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने मुसलमानों के लिए आरक्षण का विरोध किया था। यह कितना खेदजनक है कि आज उन जैसा एक स्वर भी नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम परिच्छेद

: 1 :

शिक्षा और भाषा

शिक्षा और भाषा सम्बन्धित होते हुए भी भाषा माध्यम मात्र ही है और माध्यम कोई भी भाषा हो सकती है।

इस विषय में इज़राइल ने एक अति श्रेष्ठ उदाहरण उपस्थित किया है। इज़राइल राज्य की स्थापना से पूर्व हैब्र्यू भाषा में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें नहीं थीं, न ही किसी स्थान पर इस भाषा में शिक्षा दी जाती थी; परन्तु इज़राइल राज्य की स्थापना के कुछ वर्ष के भीतर ही इज़राइल में प्रथम श्रेणी से लेकर डाक्टरेट तक की शिक्षा हैब्र्यू में दी जाने लगी है।

परन्तु भारत में अंग्रेजों ने अपने राज्य में दास प्रकृति के लोग उत्पन्न कर दिये थे। इन दास प्रकृति वालों में हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक है। परिणाम-स्वरूप जब स्वराज्य मिला तो ये दास प्रकृति के हिन्दू कूद-कूद कर संविधान सभा की कुर्सियों पर आ बैठे और अपने आकाओं की गतिविधियों की नकल उतारने लगे।

यह सर ह्यूम की योजना का ही फल था। उसने कांग्रेस की स्थापना के समय, भारत के विश्वविद्यालयों के स्नातकों के नाम एक पत्र द्वारा प्रेरणा दी थी कि वे देश का नेतृत्व अपने हाथों में लें। उस पत्र का स्नातकों ने स्वागत किया और ये स्नातक अपनी देशीय भाषाओं तथा ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ, अंग्रेज़ी गतिविधियों से प्रभावित देश का नेतृत्व करने आ बैठे। प्रथम बैठक में ही जो कांग्रेस का संविधान बना, वह यह था कि कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा होना अनिवार्य होगा।

इस प्रकार कांग्रेस को देश की मूलधारा से पृथक् कर कांग्रेस की स्थापना की गई। ये लोग समझते थे कि जो अंग्रेज़ी पढ़ा नहीं है वह अनपढ़ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1919 में महात्मा गांधी कांग्रेस में आये और उन्होंने कांग्रेस में पहली बार हिन्दुस्तानी भाषा को स्थान दिलवाया, परन्तु सन् 1949 में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे हठ करने लगे कि अंग्रेज़ी के बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता।

सन् 1919 से कांग्रेस पर नेहरू परिवार का साया मँडराने लगा था। पण्डित मोती लाल नेहरू अंग्रेज़ी के इतने शौकीन थे कि उन्होंने अपने सुपुत्र श्री जवाहर लाल नेहरू को जन्म से ही अंग्रेज़ी की शिक्षा दिलाई थी। उसे माँ के दूध के साथ अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा मिली थी।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग संविधान सभा में जा बैठे थे और उसका ही परिणाम था कि अंग्रेज़ों का राज्य चले जाने पर भी ये हिन्दुस्तानी, अंग्रेज़ी भाषा का मोह नहीं छोड़ सके। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि संविधान सभा की कार्यवाही अंग्रेज़ी में ही चली।

उस समय देश में अंग्रेज़ी बोल और समझ सकने वालों की संख्या दो अथवा तीन प्रतिशत के भीतर थी और ये लोग शेष 98 प्रतिशत को धोखा देने में सफल हो गए। इन्होंने पहले तो अंग्रेज़ी को पन्द्रह वर्ष के लिए देश में अधिष्ठित रखने का निश्चय किया और यह कहा कि कोई भी हिन्दुस्तानी भाषा राष्ट्र भाषा पद के योग्य नहीं है।

परन्तु चूँकि सन् 1919 से लेकर गांधी जी यह प्रयास करते रहे थे कि देश की भाषा हिन्दुस्तानी हो, इस कारण इनको यह कहना पड़ा कि हिन्दी को पन्द्रह वर्ष में हम उन्नत करेंगे। यह भी निश्चय कर दिया कि प्रति पाँच वर्ष के उपरान्त एक आयोग नियुक्त किया जाएगा, जो हिन्दी भाषा की प्रगति का अनुमान लगाकर आगे के लिए कार्यक्रम बनाएगा।

हुआ यह कि इन पन्द्रह वर्षों में हिन्दी की प्रगति में बाधा डालने के लिए अनेक प्रकार के बहाने और षड्यन्त्र होने लगे।

विचित्र बात यह हुई कि संविधान सभा में ऐसे लोग थे जो हिन्दी का विरोध करने के लिए तमिल भाषा की माला जपते थे परन्तु सिफारिश करते थे अंग्रेज़ी की। यही बात बंगाल की थी। बंगला भाषा तमिल से अधिक उन्नत है और उसमें साहित्य का तथा ज्ञान-विज्ञान का एक बहुत बड़ा भण्डार बन चुका है, परन्तु बंगाल के कांग्रेसी नेता हिन्दी का विरोध करने के लिए दुहाई बंगला की देते थे और चालना अंग्रेज़ी को देना चाहते थे।

हम समझते हैं कि कांग्रेस की पूर्ण योजना ही अंग्रेज़ी भाषा, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और राजनीति की धुरी पर आधारित थी। इसमें भारतीयता का लेशमात्र भी नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेसी तो सन् 1884 से 1919 तक बड़ी-बड़ी नौकरियों के स्थानों के लिए कांग्रेस की महिमा बढ़ाते रहे और पीछे अंग्रेज़ों को निकालकर राज्य स्थापित करने के यत्न में अंग्रेज़ और अंग्रेज़ी का ढोल बजाते रहे।

जब संविधान बनने लगा तो इन महानुभावों को पूर्ण देश में एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिला जो अंग्रेज़ी प्रभाव से मुक्त होकर देश की भलाई का विचार कर सकता।

परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस के बाहर की जनता को छलने के लिए इन्होंने अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी की स्थापना के लिए पन्द्रह वर्ष की अवधि निश्चित कर दी।

पन्द्रह वर्ष में हिन्दी की प्रगति देखने के लिए पाँच-पाँच वर्ष के अन्तर पर दो आयोग नियत करने थे। प्रथम आयोग जो 1955 में बनना था, वह 1958 में नियुक्त हुआ और इसने अपनी रिपोर्ट 1960 के लगभग दी और दूसरा आयोग आज संविधान बने तीस-इकतीस वर्ष हो गए हैं, अभी तक भी नियुक्त नहीं हुआ और अंग्रेज़ी को अब सदैव के लिए भारत की भाषा बनाने का आयोजन होने लगा है।

इस भाषा के प्रश्न को राष्ट्र का प्रश्न न बनाकर अंग्रेज़ी के प्रचार का प्रश्न बना दिया गया है। इससे अधिक विस्मयजनक बात और नहीं हो सकती कि अभी तक संविधान की सरकारी प्रति अंग्रेज़ी में ही मिलती है। अधिकृत प्रति न तो हिन्दी भाषा में है और न ही किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा में है।

भारत का संविधान एक अभारतीय भाषा में है। इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि भारत की भाषा बलपूर्वक अभारतीय भाषा बनाई जा रही है।

इन अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन और हिन्दी प्रचारिणी सभा में अंग्रेज़ी भाषा हितैषी घुसेड़ रखे हैं और उनको हिन्दी की प्रगति अवरुद्ध करने में प्रयोग किया जाता है।

हमारा सुझाव इसमें यह है कि भाषा के प्रश्न को शिक्षा के प्रश्न से पृथक् कर देना चाहिए।

हमने ऊपर यह कहा है कि शिक्षा राष्ट्रीय विषय होना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि पूर्ण राष्ट्र की शिक्षा एक ही समान होनी चाहिए। इसके लिए एक ही केन्द्रीय शिक्षा आयोग होना चाहिए।

(1) एक शिक्षा आयोग हो जिसमें देश के विश्वविद्यालयों का एक-एक तथा प्रत्येक राज्य का एक-एक प्रतिनिधि हो। यह अपने अधीन प्रत्येक राज्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए एक-एक समिति बनाएगा। वे समितियाँ अपने-अपने राज्यों के विश्वविद्यालयों की देख-रेख करेंगी। इस देख-रेख में विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थिति, इनके लिए भवन-स्थान इत्यादि का प्रबन्ध करेंगे।

(2) प्रत्येक विश्वविद्यालय का अपना-अपना एक क्षेत्र होगा।

(3) प्रत्येक विश्वविद्यालय का एक कुलपति हो और कुलपति के अधीन शिक्षा समिति एवं प्रबंध समिति हो।

(4) शिक्षा समिति विश्वविद्यालय क्षेत्र के बालक-बालिकाओं एवं प्रौढ़ों की शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाए। मुहल्लों की पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालयों की उच्चतम कक्षा तक के पाठ्यक्रम बनाना इसका कार्य हो।

(5) प्रबन्धक समिति अध्यापकों की नियुक्ति, उनका स्तर और उनके स्थानांतरण इत्यादि का प्रबन्ध करे। यही समिति विद्यालयों और महाविद्यालयों में स्थान, फर्नीचर एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य सामान का प्रबन्ध करे।

(6) प्रत्येक विश्वविद्यालय में कुलपति एक विभाग इस प्रयोजन से बनाए जो उस विश्वविद्यालय की आय के साधनों पर दृष्टि रखकर उसकी और उसके अधीन विद्यालयों, महाविद्यालयों की योजना बनाया करे।

(7) आयकर विभाग अपने करों में से एक भाग शिक्षा आयोग को दे।

आयकर के विषय में हम लिख चुके हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ भी आय करता है उसमें से उसे कर देना चाहिए। हमारा सुझाव है कि राष्ट्र के प्रत्येक घटक को यह अनुभव होना चाहिए कि वह राष्ट्र की पालना करता है और राष्ट्र उसका है। एक सौ रुपये मासिक की आय वाले पर भी दो प्रतिशत कर हो सकता है। वे वर्ष में चौबीस रुपये कर दें।

आय में वृद्धि के साथ कर की दर भी बढ़नी चाहिए। परन्तु अधिक से अधिक आयकर 17 प्रतिशत तक हो। जिनकी वार्षिक आय इतनी हो कि उन पर कर 17 प्रतिशत से अधिक लगाना पड़े तो वह अधिक करों की आय सब-की-सब शिक्षा आयोग को दे दी जाए, चाहे कर-दाता स्वयं दे और चाहे आयकर विभाग कर-दाता से प्राप्त कर दे।

यदि कोई धनी शिक्षा के लिए स्वयं दान दे देता है तो वह विश्वविद्यालय का प्रमाण-पत्र दिखाकर कर से उतनी छूट ले सके। शिक्षा आयोग इस प्रकार प्राप्त धन राशि को विश्वविद्यालयों में बाँट दे।

इसके अतिरिक्त भी राष्ट्र के घटकों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिए कि शिक्षा के लिए खुले हाथ से दान करें। इसके लिए विद्यालयों को अपनी पढ़ाई का वृत्तान्त जनता को देते रहना चाहिए, जिससे जनता को दान-दक्षिणा की प्रेरणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती रहे।[1]

शिक्षा आयोग पूर्ण देश की शिक्षा का स्तर एक समान रखने का यत्न करे।

भाषा के विषय में हमारा यह मत है कि विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम विश्वविद्यालय स्वयं निश्चय करे। प्रतिबन्ध केवल इतना हो कि उनके माध्यम का चुनाव कोई भी क्षेत्रीय भाषा हो सकती है। हमारा अभिप्राय यह है कि कलकत्ता में बंगाल राज्य के बाहर के लोग भी बहुत संख्या में रहते हैं तो वहाँ का विश्वविद्यालय भी हिन्दी अथवा तमिल अथवा कोई अन्य भाषा के माध्यम से शिक्षा का प्रबन्ध करा सकता है। कलकत्ता, बम्बई जैसे नगरों में एक से अधिक विश्वविद्यालय भी हो सकते हैं और एक विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम दूसरे से भिन्न भी हो सकता है। शर्त यह हो कि वे माध्यम देश की क्षेत्रीय भाषाओं में से कोई भी भाषा हो। क्षेत्रीय भाषाओं में राज्य भाषाएँ समझी जाएँ और इनकी एक अनुसूची संविधान के अंत में रहे। जहाँ तक सरकारी भाषा का सम्बन्ध है केन्द्रीय शासन की तथा केन्द्रीय समितियों की भाषा हिन्दी हो। यदि केन्द्र अहिन्दी भाषा-भाषियों को सरकारी सेवा में ले तो उनको हिन्दी में शिक्षा देने का प्रबन्ध करे। हिन्दी भाषा कार्यालय के प्रयोग के लिए पाँच-छह मास में सीखी जा सकती है।

जहाँ तक केन्द्र और राज्यों का सम्बन्ध है, प्रत्येक राज्य को अपने-अपने कार्यालयों में हिन्दी में अनुवादक रखने होंगे और केन्द्र को क्षेत्रीय भाषाओं के अनुवादक रखने होंगे। यह प्रबन्ध शासन का होगा। इसमें शिक्षा आयोग का हस्तक्षेप नहीं हो और न ही शासन शिक्षा आयोग को आज्ञा दे सके कि उसके लिए उसकी भाषा के घटक तैयार कराए। अपने-अपने राज्य में विश्वविद्यालयों को राज्य-शासन प्रेरणा दे सके कि वे विश्वविद्यालय का माध्यम क्षेत्रीय भाषा रखें।

यह हम बता चुके हैं कि किसी भी राज्य में वहाँ की क्षेत्रीय भाषा में अतिरिक्त भाषाई विश्वविद्यालय भी हो सकता है।

यह प्रयास कि पूर्ण देशों की एक भाषा हो, इसका न तो सरकार से सम्बन्ध हो, न ही शिक्षा आयोग से।

यह देश के विचारकों का काम है और वे ऐसा प्रेरणा से ही कर सकते हैं।

वैसे हम समझते हैं कि देश की प्रायः सब क्षेत्रीय भाषाओं का मूल स्रोत

---

1. इस विषय में लेखक ने अपनी पुस्तक 'वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिन्दू राष्ट्र' में विस्तार से लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत भाषा है। मुसलमानों के देश में आने से पूर्व संस्कृत भाषा पूर्ण भारत में बोली और समझी जाती थी और इस मूल भाषा की ओर राष्ट्र की सब भाषाओं का मुख हो सकता है।

इसके लिए शिक्षा आयोग बिश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत भाषा की शिक्षा अनिवार्य रखे तो इस दिशा में प्रगति हो सकती है।

हमारा यह अनुभव है कि संस्कृत भाषा का, विशेष रूप में वैदिक भाषा का भूमण्डल के ज्ञान-विज्ञान से घना सम्बन्ध है, परन्तु इस विषय को हम राष्ट्र के विद्वानों के हाथ में छोड़ते हैं। इसे संविधान का विषय नहीं बनाना चाहते।

: 2 :

अर्थ-व्यवस्था और आयोग

अर्थ-व्यवस्था के लिए संविधान में एक अर्थ-आयोग बनाने का विधान होना चाहिए। यह आयोग देश की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए पग उठाए।

इस आयोग का सम्बन्ध एक ओर तो कर-विभाग से हो और दूसरी ओर यह देश की भौतिक उन्नति की ओर ध्यान रखे।

यह आयोग व्यवस्था करे कि नगर-नगर में तथा देश में व्यापार एवं उद्योग सदन (Industrial and commerce chambers) स्थापित हों। ये सदन जहाँ अपने सदस्यों को व्यापार और उद्योगों में उन्नति करने के ढंग बताएँ, वहाँ शासन को राष्ट्र के इन अंगों की आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों की सूचना दिया करें।

कोई भी व्यक्ति कोई भी व्यवसाय अथवा उद्योग चालू कर सकता है। साधनविहीन लोग यदि किसी बड़े व्यवसाय अथवा उद्योग की क्षमता नहीं रखते तो उनको चाहिए कि धनवानों को अपने गुणों का परिचय दें और उनके सहयोग से अपने गुणों के अनुसार कार्य करने का यत्न करें।

इसके अतिरिक्त धनीमानी लोगों को बैंक एवं अर्थ लगाने वाली संस्थाएँ (Financing Corporations) खोलनी चाहिएँ।

इनका सम्बन्ध संविधान से नहीं है। इस पर भी यह राष्ट्रीय कार्य होगा जो धनीमानी लोगों को स्वेच्छा से करना चाहिए। अर्थ-आयोग को इसकी प्रेरणा देनी चाहिए।

यह हम बता चुके हैं कि अर्थ-आयोग एवं शिक्षा-केन्द्रों को राष्ट्र के घटकों को यह प्रेरणा देनी चाहिए कि छोटे-छोटे व्यापार एवं उद्योग केन्द्र खोलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़े-बड़े केन्द्रों में पैदावार तो बढ़ाई जा सकती है; बड़ी-बड़ी मशीनें लगाने से माल का द्रुतगति से उत्पादन किया जा सकता है परन्तु माल सस्ता नहीं हो सकता और साथ ही धन्धों का मुख्य अभिप्राय है बेकारी दूर करना, वह भी सम्पन्न नहीं हो सकता।

बड़ी मशीनों पर निर्माण सदा महँगा पड़ता है। बड़े कारखानों पर लगने वाली पूँजी, बड़ी-बड़ी मशीनों की टूट-फूट की मरम्मत, साथ ही उनको चलाने के लिए ऊर्जा का अत्यधिक प्रयोग होता है और फिर राष्ट्र में बेकारी बढ़ती है।

अर्थ-आयोग को इस विषय का प्रचार करना चाहिए जिससे कि समाज का मुख्य रोग अर्थात् बेकारी दूर करना सम्भव हो सके।

यह भी अर्थ-आयोग का कार्य है कि वह 'टैक्निकल' (कला कौशल) शिक्षा तथा टैक्नोलोजी में शीघ्र कार्य का प्रबन्ध करे।

इसका सीधा ढंग यह है कि शासन एवं विश्वविद्यालय इस शिक्षा के लिए अर्थ-आयोग की सहायता करें। यह आयोग धनी लोगों से भी सहायता ले सकता है।

हमने लिखा है कि शिक्षा तथा शोध कार्य विश्वविद्यालयों का दायित्व है। इस पर भी यदि अर्थ-आयोग किसी तकनीकी कार्य पर शोधकार्य करवाना चाहे तो यह विश्वविद्यालय को सुझाव दे सकता है अथवा स्वयं शासन और राज्य से सम्पर्क बना इस विषय में कार्य करवा सकता है।

इस आयोग का उन सब कारखानों अथवा व्यवसाय-केन्द्रां में जहाँ दस से अधिक व्यक्ति काम करते हों, मालिक-कर्मचारी सम्बन्धों में समन्वय कराना भी कर्त्तव्य हो। इस विषय में कानून तो धर्म-सभा ही बनाए, परन्तु विवाद से पूर्व मालिक-कर्मचारी में सुखद् समन्वय रहे, इसके लिए यह आयोग प्रयत्न करे।

इस समन्वय के लिए यह आयोग कर्मचारी कल्याण विभाग का गठन करे।

कर्मचारी कल्याण विभाग कर्मचारियों के लिए पुस्तकालय, बच्चों के लिए संग्रहालय (Museum), औषधालय इत्यादि चालू करे। इनके अतिरिक्त जब भी किसी स्थान पर कर्मचारी और मालिकों में मतभेद उत्पन्न होने लगे, वहाँ विवाद को अदालत में जाने से पहले सुधारने का यत्न करे।

हमने बताया है कि कर्मचारी अथवा मालिक, जिस किसी को भी विवाद की आशंका हो, वह उद्योग के तथा व्यवसाय के न्यायालय को सूचित कर दे और सूचना पहुँचते ही, कुछ घंटों के भीतर ही न्यायाधीश स्वयं विवाद के स्थान पर पहुँचकर पूछताछ करे।

उस न्यायाधीश को दोनों पक्षों की बात सुनकर कारखाना अथवा उद्योग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालू रखने के लिए अस्थायी प्रबन्ध कर देना चाहिए तथा मूल विवाद का एक सप्ताह में निर्णय दे देना चाहिए। सामयिक निर्णय एक सप्ताह तक ही चल सकता है और इस काल के भीतर ही विवाद का निर्णय हो जाना चाहिए। यदि कोई पक्ष सामयिक निर्णय को स्वीकार नहीं करे, तो वह दण्डनीय माना जाए। इस औद्योगिक न्यायालय के निर्णय पर पुनरावलोकन की याचिका उच्च न्यायालय में की जा सकती है। विवाद सुप्रीम कोर्ट तक जा सकता है परन्तु इस काम के लिए विशेष न्यायाधीश होने चाहिएँ और किसी भी विवाद का सुप्रीम कोर्ट तक के निर्णय में छह मास से अधिक समय नहीं लगना चाहिए।

इस पर भी अन्तिम न्यायालय के निर्णय तक औद्योगिक न्यायालय का निर्णय चालू रहे। उसे भंग नहीं किया जा सके। भंग करने वाले को दण्डित किया जाए।

किसी सूरत में भी हड़ताल नहीं होनी चाहिए। हड़ताल करना यह कर्मचारियों अथवा मालिकों का निजी विषय नहीं है। यह देश के उपभोक्ताओं का विषय है।

न्यायालय के निर्णय को भंग करने वाला कैद या जुर्माना अथवा दोनों से दण्डित किया जा सके। विवाद होने पर न्यायालय को सूचना भेजने में विलम्ब भी दण्डनीय हो।

यह आयोग ही अन्वेषण कार्यक्रम द्वारा नये-नये कार्य के स्रोतों का पता करे तथा उसका विवरण दिया करे।

सरकार को स्वयं उद्योग तथा व्यवसाय नहीं करना चाहिए। यदि कभी कोई व्यवसाय करना पड़े तो वह इस अर्थ-आयोग के अधीन हो।

सार्वजनिक उद्योग तथा व्यवसाय भी वैसे ही समझे जाएँ, जैसे निजी पूँजी से करने वाले उद्योग तथा व्यवसाय। अर्थ आयोग यदि देश की अर्थ-व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन चाहे तो यह धर्म-सभा को सुझाव दे सके कि क्या परिवर्तन यह चाहता है और क्यों चाहता है।

: 3 :

सुरक्षा-आयोग
(Defence Commission)

इस आयोग का कार्य देश की सुरक्षा का प्रबन्ध करना है। यह आयोग अपनी कार्यवाही गुप्त रख सके। इसके अधीन देश की सुरक्षा का प्रत्येक कार्य हो। इस आयोग का काम हो कि विभाग की सेवाओं के नियम-उपनियम बनाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुरक्षा के लिए प्रबन्ध करे। सेना के लिए शस्त्रास्त्र निर्माण करने का कार्य (Ordinance factories) और फिर उसके भण्डार की देखरेख का प्रबन्ध भी आयोग अपनी देखरेख में करे।

प्रबन्ध तो यह आयोग देखे, परन्तु युद्ध तथा सन्धिवार्ता का कार्य यह आयोग राष्ट्रपति की तथा तीनों समितियों की सहायता से करे।

सेना में अनुशासन तथा अन्य प्रकार के नियमों के लिए यह न्याय-व्यवस्था भी करे। ऐसे कार्यों के लिए न्यायालय पृथक् हों परन्तु न्यायाधीश वही व्यक्ति हो सकें जिनको न्याय-समिति इस कार्य के लिए उपयुक्त समझे। नियुक्ति सुरक्षा आयोग की सम्मति से न्याय-समिति ही करे।

सुरक्षा आयोग का खर्च तो शासन वार्षिक आय-व्यय वृत्तान्त (Budget) में बिना व्याख्या के दे, परन्तु उसका प्रयोग यह आयोग ही करे। इस आयोग को, धर्म सभा से बनाए नियमों के अधीन राष्ट्रपति राय दिया करे।

देश की सीमाओं को बढ़ाने अथवा कम करने में यह आयोग सम्मति दे सके। इन सीमाओं को बढ़ाने अथवा कम करने में देश की सुरक्षा का प्रथम विचार होना चाहिए। इसी कारण इस आयोग की सम्मति एक आवश्यक सम्मति समझी जाए।

सैनिक अथवा राष्ट्र के सेना सम्बन्धी रहस्योद्घाटन के अपराधों के लिए सैनिक न्यायालय विचार करे। उन पर केवल सर्वोच्च न्यायालय में पुनरावलोकन हो सके। दण्ड के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक हो। किसी विदेश के साथ युद्ध की घोषणा का समर्थन राष्ट्रपति सुरक्षा-आयोग की राय से ही कर सके, परन्तु इस घोषणा का समर्थन चौबीस घंटे के भीतर राष्ट्र की तीनों समितियों के प्रतिनिधियों की सभा से लेना अनिवार्य हो। इन तीनों समितियों की प्रतिनिधि सभा राष्ट्र-सभा कराए।

देश में आपात्-स्थिति की घोषणा भी राष्ट्रपति उसी प्रकार कर सके जैसे किसी विदेश के साथ युद्ध की घोषणा और वैसे ही इसका समर्थन चौबीस घंटों के भीतर राष्ट्र-सभा के द्वारा कराना आवश्यक हो।

: 4 :

आपात्-स्थिति

आपात्-स्थिति केवल उस समय ही घोषित की जा सके जब राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि देश पर आक्रमण होने जा रहा है अथवा राष्ट्र के सुरक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयोग ने किसी विद्रोही राज्य को दबाने के लिए सैनिक कार्यवाही करने की ठीक सिफारिश की है। इन दोनों अवस्थाओं में भी, चौबीस घंटों के भीतर राष्ट्र की तीनों समितियों की संयुक्त बैठक से स्वीकृति लेनी अनिवार्य हो।

राष्ट्र एवं देश के भीतरी झगड़ों के लिए आपात्-स्थिति लागू नहीं की जानी चाहिए। जब तक विवाद देश के भीतर ही रहे, न सैनिक कार्यवाही हो सके न ही आपात्-स्थिति लागू हो।

आपात्-स्थिति में जारी किए कार्य और आदेश आपात्-स्थिति के लिए ही हों। आपात्-स्थिति हट जाने पर वे आदेश स्वतः वापस हो जाएँ और देश में सामान्य व्यवस्था (कानून) जारी हो जाए। ये परिवर्तन स्वतः आपात्-स्थिति उठा लेने के साथ ही हो जाएँ।

यदि आपात्-स्थिति में, देश-द्रोह में कई लोग पकड़े जाएँ तो उनके मामलों पर पुनरावलोकन के लिए विशेष न्यायालय नियुक्त किए जाएँ जो किसी सर्वोच्च न्यायालय के अथवा सेवामुक्त न्यायाधीश के अधीन हों। आपात्-स्थिति के बंदियों के मामले छह मास के भीतर इन विशेष न्यायालयों में निश्चय हों। इनकी अपील न्यायालय के कम से कम तीन न्यायाधीशों के सम्मुख उपस्थित की जा सके।

हम आपात्-स्थिति लगाने के लिए वर्तमान संविधान से दो बातों में अन्तर करवाना चाहते हैं। एक तो यह कि आपात्-स्थिति राष्ट्रपति के आदेश से लागू हो। दूसरे, यह केवल उस स्थिति में लागू हो जब देश पर किसी बाहरी राज्य का आक्रमण होने जा रहा हो अथवा देश का कोई राज्य विद्रोह करना चाहता हो। आक्रमण एवं विद्रोह सैनिक हो अथवा नागरिक, दोनों अवस्थाओं में आपात्-स्थिति लागू हो सके।

जहाँ तक आपात्-स्थिति के भीतर की कार्यवाही का सम्बन्ध है, वह स्थिति लगने के उपरान्त जाँच-पड़ताल का विषय हो। जो कुछ नियम-उपनियम उस समय बनाए जाएँ, वे आपात्-स्थिति समाप्त होते ही समाप्त समझे जाएँ और आपात्-स्थिति में पकड़े गए जो लोग छोड़े नहीं गए हों, उन पर न्यायालय जाँच करें।

: 5 :

यह राष्ट्र के घटक एवं नागरिकों के मूलाधिकारों में होना चाहिए कि वह जब भी राज्य द्वारा अथवा किसी नागरिक द्वारा पीड़ित अनुभव करे तो वह बिना पुलिस में रिपोर्ट लिखाए किसी भी न्यायाधीश के पास जाकर अपने कष्ट की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जी कर सके। न्यायाधीशों की गणना में तहसीलदार से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तक आते हैं। कोई भी न्याय की गद्दी पर बैठा हुआ, किसी भी राष्ट्र के घटक की याचिका पढ़कर स्वीकार कर सके अथवा उसको उचित अधिकारी के पास जाँच-पड़ताल तथा कार्यवाही के लिए भेज सके। पुलिस तो देश में प्रबन्ध करने वाला संस्थान है, लोगों की शिकायतें सुनने का स्थान नहीं है। इसके लिए न्यायाधीश ही उचित व्यक्ति है।

यह देखना न्यायाधीश का काम हो कि अर्जी जो की गई है वह उचित है अथवा नहीं और किस अधिकारी के पास जानी चाहिए।

इसके साथ ही यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि झूठा आरोप लगाने वाला भी दण्डनीय हो। अभिप्राय यह है कि सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायालयों में एक विभाग इस अर्थ बनाया जाए जिसमें इस प्रकार की याचिकाएँ की जाएँ।

वैसे पुलिस भी, किसी व्यक्ति के कानून भंग करने पर जाँच-पड़ताल कर, उसके विपरीत उचित मुकद्दमा कर सकती है।

न्यायाधीश से प्रबन्ध सम्बन्धी काम नहीं लिया जाए। इसके लिए शासन के अधीन कर्मचारी नियुक्त हों। न्याय करने वाले और शासन करने वाले अधिकारी तथा विभाग पृथक्-पृथक् हों।

सम्पत्ति

मूलाधिकारों के अध्याय में हमने सम्पत्ति के विषय में अपने विचार बताए हैं। इस विषय में कुछ व्याख्या से लिखने की आवश्यकता है।

मनुष्य जितना भोग करता है, उससे अधिक, यदि किसी प्रकार की बाधा न हो तो उत्पन्न कर सकता है। खाए हुए अन्न से इतनी शक्ति निर्माण होती है कि उससे अधिक अन्न एवं अन्य वस्तुएँ निर्माण की जा सकती हैं। उस अधिक शक्ति को, बुद्धियुक्त प्रयोग से और बढ़ाया जा सकता है। बुद्धि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की और भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है। अतः दो व्यक्ति समान अन्न की मात्रा खाते हुए भी भिन्न-भिन्न गुणों वाले और भिन्न-भिन्न मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं।

यह उत्पादन-शक्ति यदि एक व्यक्ति से दूसरे में अधिक है तो इनमें न तो कुछ अनुचित है, न अकारण।

वैसे स्वाभाविक परिस्थितियों में भी किसी भी दो व्यक्तियों की उत्पादन सामर्थ्य बराबर नहीं होती। दो व्यक्तियों को बराबर साधन दे दिए जाएँ तो वे उनका समान उपयोग नहीं कर सकते और फल भी समान नहीं होगा। हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने का अभिप्राय है कि उत्पादन-शक्ति न केवल भौतिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है वरन् यह मनुष्य में उपस्थित सामर्थ्य, ज्ञान और बुद्धि पर भी निर्भर करती है। ये सब में समान रूप और समान मात्रा में नहीं होते।

इसके साथ ही उत्पादन के साथ व्यय करने का भी सम्बन्ध है। हमने बताया है अर्जन और व्यय में अन्तर होता है और अर्जन से व्यय सदा कम होता है। कुछ अत्यन्त मूर्खों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति जितना अर्जन करता है उससे कम ही उस अर्जन एवं निर्माण के लिए व्यय करता है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य के पास आय में से व्यय करने पर शेष बचता है। व्यक्ति वह शेष अपनी कामनाओं की पूर्ति में व्यय करता है। कामनाएँ भी सबकी समान नहीं होतीं। इस कारण मनुष्य के पास अर्जन से जो बच जाता है, वह बराबर व्यय नहीं होता।

एक कुली का उदाहरण लिया जा सकता है। वर्तमान काल में एक मजदूर (unskilled labour) दस रुपये नित्य पैदा करता है। उसके पास सामान्य रूप में तीन से चार रुपये तक बच जाते हैं। इनको वह अपनी कामनाओं के पूर्ण करने में व्यय करता है। कोई नित्य सिनेमा देखने जाता है तो दूसरा चाट-भल्ले-पकौड़ी खाने में व्यय कर देता है। कोई अपना अर्जित व्यर्थ के कार्यों में व्यय कर देता है, इत्यादि।

हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि काम करने वाले की आय उसके व्यय से अधिक होती है और यह अधिक आय व्यर्थ न करे तो उसके पास बचत हो सकती है। अपनी कामनाओं को सीमित करने से वह आय में से बचा सकता है और यही बचत जब केन्द्रित होती जाती है तो सम्पत्ति कहाती है।

इसमें हमने विकारों अथवा फजूलखर्ची को नहीं लिया। हमने कहा है कि काम करने वाला उत्पादन पर जितना व्यय करता है, उससे अधिक उत्पादन करता है। यदि वह अपने व्यय पर नियंत्रण रखे तो शेष को बचा सकता है।

अत: बचत करना स्वाभाविक है और सम्पत्ति एकत्रित होना अस्वाभाविक नहीं। इस कारण यदि कोई राज्य सम्पत्ति बनाने पर रोक लगाएगा तो वह एक अस्वाभाविक कार्य करने का अपराधी होगा।

सम्पत्ति रखने को वर्जित करना एक विकराल पाप है। यह बलशाली का अत्याचार ही कहा जा सकता है।

यह ठीक है कि कुछ लोग अनुचित उपायों से आय करते हैं, परन्तु यह एक अस्वाभाविक और अधर्मयुक्त कार्य है। कुछ के ऐसा करने से सबको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पत्ति रखने से वर्जित कर देना ऐसा ही है, जैसे समाज में कुछ अंधे हों तो सबको अंधा करने की आज्ञा दे दी जाए।

हम समझते हैं कि संविधान में यह धारा होनी चाहिए कि धर्मानुसार (कानून के अनुसार) अर्जित धन, अर्जन करने वाले का है और वह उसका प्रयोग धर्मानुसार कहीं भी कर सकता है।

धर्मयुक्त की व्याख्या धर्म-समिति दे।

कर्त्तव्य

हमारे संविधान में एक धारा 51-2 है, जिसके अन्तर्गत नागरिकों के कुछ कर्त्तव्य बताए हैं।

हम इसकी संविधान में आवश्यकता नहीं समझते। राष्ट्र के एक घटक का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र के हित के लिए इसकी प्रत्येक प्रकार से रक्षा करे। हम समझते हैं कि राष्ट्र के लक्षणों में ही यह आ गया है। इसके लिए किसी विशेष धारा की आवश्यकता नहीं।

कार्यवाह अधिकारी

संविधान में इसका उल्लेख भी व्यर्थ है। शासन के कर्त्तव्य वर्णन किए जा चुके हैं और शासन के अधीन शासन के अधिकारी भी हैं। राष्ट्रपति ही एक व्यक्ति है जो शासन से ऊपर है और उसके कर्त्तव्यों का निर्णय हो चुका है।

संविधान में परिवर्तन, विशेष रूप से इसके आधारभूत स्थलों में, विद्वानों की सभा ही कर सके। हमारा विचार है कि संविधान एक स्थायी प्रलेख है। इसमें परिवर्तनशील विषय होने ही नहीं चाहिएँ। उन विषयों को सामान्य कानून में रखना चाहिए। जो स्थायी दीर्घकालीन स्थिरता का विधान हो, वह ही संविधान में आना चाहिए।

संविधान सभा कभी आवश्यकता पड़े तो बुलाई जा सकती है, परन्तु उसका संगठन धर्म-समिति और न्याय-समिति की भाँति ही होना चाहिए। संविधान सभा के निर्वाचन के पहले यह घोषणा हो जानी चाहिए कि किस विषय में संविधान में परिवर्तन अर्थात् नया समावेश अथवा रद्द किया जाना है और समाचार-पत्रों में उसका वाद-विवाद छह मास तक होना चाहिए। तब इसमें परिवर्तन के लिए धर्म-सभा की भाँति निर्वाचन हों तथा संविधान-सभा बनाई जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सभा केवल संविधान में संशोधन के लिए ही हो। इसके उपरान्त इसको भंग कर देना चाहिए।

संविधान में परिवर्तन वर्जित नहीं, परन्तु ये कभी-कभार ही होने चाहिएँ। संविधान में स्थायी बातों की ही सामग्री होनी चाहिए।

हमारे संविधान में बहुत से पृष्ठ लोक सभा, राज्य सभा, मंत्रिमंडल इत्यादि पर लिखे गए हैं। ये संविधान का अंग नहीं हो सकते। संविधान तो स्थायी प्रलेख है। यह राष्ट्र और शासन में अनुबन्ध है। शासन-समिति और धर्म-समिति अपने-अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए नियम-उपनियम बनाते रहें, परन्तु उनका संविधान के प्रलेख से कोई संबंध न हो।

इसी प्रकार राज्य विधान सभाओं के नियम-उपनियम हैं। हम इनको भी संविधान का अंग नहीं मानते। न्यायालयों, कर्मचारियों इत्यादि की बहुत-सी व्यर्थ की बातें संविधान में कही गई हैं।

एक अंतिम परन्तु परमावश्यक बात हम संविधान में और चाहते हैं। सब निर्वाचित पदों पर आने की इच्छा रखने वालों से यह आकांक्षा नहीं की जा सकती कि वे उन पदों पर पहुँचने के लिए अपने पास से कुछ भी व्यय कर सकें। एक तो यह अन्याय होगा और दूसरे, जो भी व्यक्ति किसी पद पर पहुँचने के लिए व्यय करेगा, वह उस पद से आय करने की आकांक्षा भी कर सकता है। साथ ही राष्ट्र के इन कामों के लिए प्रत्याशी की आर्थिक क्षमता सहायक अथवा बाधक हो जाएगी। यह हम नहीं चाहते। इस कारण हम यह व्यवस्था भी संविधान में चाहते हैं कि राष्ट्र की विभिन्न समितियों और परिषदों के लिए प्रत्याशी की ओर से एक पैसा भी व्यय किया जाना वर्जित हो।

राष्ट्र को अपने कार्य के लिए उचित अधिकारी चाहिएँ। इस कारण निर्वाचनों के लिए प्रत्याशियों की उचित सहायता राष्ट्र को ही करनी चाहिए।

इस कारण कुछ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि—

(1) देश में किसी भी समिति, उपसमिति, केन्द्रीय अथवा राजकीय का निर्वाचन दलगत न हो। केवल धर्म-समिति में निर्वाचन दलगत हों। इसमें भी निर्दलीय प्रत्याशी हो सकते हैं। धर्म-व्यवस्था में मतभेद हो सकता है। शासनादि समितियों में सदस्य दलगत होने वर्जित हों।

(2) सब राष्ट्र एवं राजकीय समितियों में प्रत्याशी के लिए धन व्यय करना वर्जित हो। इसके स्थान राष्ट्र की ओर से सब प्रत्याशियों को निर्वाचन लड़ने के लिए सहायता मिलनी चाहिए। जब प्रत्याशी का नाम निर्वाचन के लिए निर्वाचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयोग स्वीकार करे, उसे अपने क्षेत्र में अपने मतदाताओं से सम्पर्क बनाने के लिए सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिएँ। प्रत्याशी एवं उसके एक प्रतिनिधि के लिए घूमने-फिरने की सुविधा राजकीय होनी चाहिए।

(3) राष्ट्रपति पद के प्रत्याशियों को पूर्ण देश में मतदाताओं से सम्पर्क बनाने के लिए यातायात का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

किसी भी राष्ट्रीय निर्वाचित पद के लिए प्रत्याशी को अपने पास से मतदाताओं से सम्पर्क बनाने के लिए कुछ भी व्यय करना दंडनीय होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

(1) हमारा यह विचारित मत है कि प्रजातंत्र, जैसा इस समय प्राय: भूमंडल के देशों में प्रचलित है, वह या तो मूर्खों द्वारा विचारित है अथवा धूर्तों द्वारा आयोजित है। राष्ट्र का कार्य करने वाले राष्ट्र के सेवक होते हैं और उनकी नियुक्ति में धन व्यय हो, यह सर्वथा अयुक्त है।

(2) जब किसी व्यक्ति को उसके गुणों से अधिक कार्य करने को दिया जाए, तब उस कार्य का बिगड़ना अवश्यम्भावी है। इस कारण गुण, कर्म, स्वभाव से अधिकारों का बँटवारा होना ही युक्तियुक्त है और यह यत्न होना चाहिए कि सब उन्नत राष्ट्र इस सिद्धान्त का पालन करें।

(3) विद्वान् तथा बुद्धिमान् लोग प्रजातंत्र की निर्वाचनों की गंदगी में लथपथ होना कभी स्वीकार नहीं करेंगे। जो अपने को विद्वान् मानते हुए भी किसी सभा-समाज में पद प्राप्त करने के लिए लाखों व्यय करने के लिए तैयार होगा वह नि:संदेह या तो मूर्ख होगा अथवा किसी लोभ में फँसा हुआ ऐसा करने के लिए तैयार होगा।

(4) हम मज़हब को वर्जित नहीं मानते। मज़हब जब व्यक्तिगत हो, चाहे विचारों में और चाहे व्यवहार में, तो यह किसी की चिन्ता का विषय नहीं होना चाहिए। परन्तु जब यह एक समुदाय का लक्षण बन जाए तो इसके व्यवहार पर कुछ सीमाएँ लगानी आवश्यक हो जाती हैं। चाहे तो उस समुदाय का संगठन परमात्मा विषयक हो चाहे वह किसी गुरु, पीर, पैगम्बर के विषय में हो, उसकी सीमाएँ बाँधनी आवश्यक हैं।

कोई भी मज़हबी समुदाय अपने को विस्तार देने के लिए बल, छल अथवा धन-जन का प्रलोभन देने वाला मज़हबी काम करता नहीं माना जा सकता। यह किसी निकृष्ट उद्देश्य से ही माना जा सकता है। राष्ट्र में ऐसी प्रवृत्ति को चलन नहीं मिलना चाहिए।

मज़हबी व्यवहार पर एवं सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय वर्जित नहीं हो सकते। गूढ़ से गूढ़ विषय पर भी विचार-विनिमय भारतीय परम्परा है, परन्तु यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्य भाषा और मधुर वाणी में होना आवश्यक है। मज़हबों के परस्पर से विचार एवं व्यवहार में यह सिद्धान्त कार्य करे—'आत्मना प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' अर्थात् जो कुछ वह अपने लिए स्वीकार नहीं करता उसे दूसरों से भी व्यवहार में नहीं लाना चाहिए।

जब-जब और जहाँ-जहाँ भी मज़हब वालों ने अपने को एक घेरे में बन्द किया है और वे घेरे के बाहर और भीतर में अन्तर करते हैं, तब-तब और वहाँ-वहाँ वे मज़हब न रहकर एक दल बन जाते हैं और इस प्रकार के दल राष्ट्र में पसन्द नहीं किए जा सकते।

मज़हबी विषयों में ऊँच-नीच नहीं हो। ऐसा मानने वाले राष्ट्रद्रोही हों।

मज़हब कुछ एक विचारों और व्यवहारों का संग्रह है। जब तक ये व्यक्ति तक ही सीमित रहते हैं, तब तक ये निरीह समझे जा सकते हैं। परन्तु जब ये व्यवहार और विचार व्यक्ति की सीमा पार कर दूसरे तक पहुँचने की छूट पाते हैं, तब उन पर लगाम लगाने की आवश्यकता हो जाती है। भले ही वह सीमोल्लंघन पति-पत्नी में हो। सीमा हमने ऊपर बता दी है, जैसा कोई अपने साथ व्यवहार चाहता हो, वैसा ही व्यवहार वह दूसरों से करे।

(5) समाज में ऊँच-नीच, मज़हब अथवा जाति-पाँति, लिंग अथवा जन्म-स्थान के आधार पर नहीं हो सकती। इसका आधार गुण, कर्म और स्वभाव हो।

(6) अतः समाज में ऊँच-नीच तो रहे, परन्तु इस ऊँच-नीच के कारण मानवीय व्यवहार में अन्तर न हो।

(7) हम राष्ट्र और राज्य में अन्तर मानते हैं। अन्तर इनके कर्त्तव्यों में है और अधिकारों में भी। राष्ट्र एक समाज है। जब कोई समाज किसी देश में बस जाता है तब उसे राज्य की आवश्यकता होती है।

राज्य समाज द्वारा निर्मित एक यंत्र है। यह उसके अधीन है। राज्य विघटित किए जा सकते हैं, परन्तु राष्ट्र निलम्बित अथवा समाप्त नहीं किए जा सकते। ये कभी-कभी अपने दोषों के कारण ही वृद्ध होकर मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं।

राष्ट्र की संजीवनी उसकी शाश्वत संस्कृति है। संस्कृति में विकार आने पर उसमें वृद्धता आती है और उस संस्कृति का वाहन राष्ट्र भी ह्रासोन्मुख हो जाता है।

(8) हमने अध्यात्म को राष्ट्र के लक्षणों से पृथक् रखा है, परन्तु परमात्मा को हमने अध्यात्म से भी पृथक् रखा है। जहाँ तक राष्ट्र का संबंध है परमात्मा ऋतों का स्वामी होने से राष्ट्र से सम्बन्ध रखता है। ऋत जिन्हें प्राकृतिक नियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Natural Laws) कहते हैं उनका राष्ट्र, राज्य और मानव व्यवहार से घनिष्ट सम्बन्ध है। इस कारण ऋतों का सम्बन्ध एक राष्ट्र से है। एक व्यक्ति परमात्मा को प्रत्यक्ष रूप से न मानता हुआ भी, जब ऋतों अर्थात् प्राकृतिक नियमों का पालन करता है तो हमारे मत से वह ईश्वर-भक्त ही कहा जाएगा। यह हम इस कारण कहते हैं कि प्रकृति जड़ होने के कारण स्वत: न तो किसी नियम की बद्ध हो सकती है न ही वह किसी नियम को बना सकती है। जड़ प्रकृति को नियम में रखने वाला कोई महान् शक्तिशाली तत्त्व ही हो सकता है। अत: जब कोई व्यक्ति प्राकृतिक नियमों का पालन करता है तब वह आस्तिक ही माना जा सकता है। परमात्मा पर विश्वास मज़हब नहीं, यह मानवता है।

मज़हबी लोग परमात्मा को मान सकते हैं। इसमें भला क्या आपत्ति की जा सकती है ? हम तो यह कह रहे हैं कि किसी भी मज़हब को न मानने वाले भी ऋतों पर आचरण करते हुए परमात्मा के भक्त ही कहे जा सकते हैं।

हम समझते हैं कि राष्ट्र के कार्य भी ऋतों अर्थात् प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही भली-भाँति चल सकते हैं। इस कारण हम अपने राष्ट्र को आत्मवादी ही मानते हैं।

अन्त में हमारी यह कामना है कि राष्ट्र के सब भले लोगों को बुद्धि के वाहन पर बैठकर चलना चाहिए। इसी में सबका कल्याण है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो लहरों की टक्कर

Central Library
167971
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

प्रसिद्ध उपन्यासकार
श्री गुरुदत्त की
अन्यतम रचना

भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना और ईसाइयों द्वारा प्राचीन ज्ञान-विज्ञान पर आरोप, इनकी प्रतिक्रिया में भारत में दो विचार-तरंगें उठीं। एक तरंग थी राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के रूप में तथा दूसरी तरंग थी महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज के रूप में। दोनों का परस्पर टकराव हुआ। यह टकराव क्या था। और समयान्तर में दोनों ने क्या-क्या रूप धारण किए, यह इस अन्यतम उपन्यास का विषय है।

सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का विश्लेषण उपन्यास के रूप में और वह भी इतना सजीव तथा सरस, यह श्री गुरुदत्त की लेखनी का कमाल है।

दो खण्डों में सम्पूर्ण ; पृष्ठ संख्या (डिमाई) १२८०

पेपर बैक : ४०० रुपये।

दोनों खण्ड सजिल्द पुस्तकालय संस्करण में ५०० रुपये।

081
167971
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-R आगत संख्या 167971

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar